CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री राघवेन्द्राय नमः ॥

卐

श्रीमन्महाभारतान्तर्गत

शुक-विरक्ति

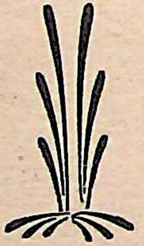

स्वामी श्री रामदत्तजी पर्वतीकर

श्री राघवेन्द्र स्वामी मिशन, बम्बई-६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री राघवेन्द्राय नमः ॥

卐

श्रीमन्महाभारतान्तर्गत

शुक - विरक्ति

स्वामी श्री रामदत्तजी पर्वतीकर

श्री राघवेन्द्र स्वामी मिशन, बम्बई - ६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक —
श्री राघवेन्द्र स्वामी मिशन
C/o श्री गोवर्धनदास के वोरा जे. पी.
६८, रूँगटा हाउस,
बम्बई - ६.

* * *

मुद्रक — श्रीमती दुर्गाबाई शास्त्री, मैनेजिंग डायरेक्टर,
भारती प्रिंटिंग प्रेस,
भारती भुवन, १५१, इमली बाजार,
इन्दौर - ४ (म.प्र.)।

* * *

मूल्य रु. १ = २५ पै.

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित।

प्रथमावृत्ति,
सितम्बर १९७१ ई.।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

* भूमिका *

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽ
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणम्
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नमामि । (भाग. १२।१२।६८)

श्री शुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्द में ही निमग्न रहते थे । श्री मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर की मधुमयी-मङ्गलकारिणी लीलाओं ने उनकी वृत्तियों को अपने में आकृष्ट कर लिया तथा उन्होंने संसार के प्राणियों पर अनुग्रह कर भगवत्-तत्त्व को प्रकाशित करनेवाले महापुराण श्रीमद्भागवत का विस्तार किया । मैं उन सर्वाघहारी व्याससूनु भगवान् श्री शुकदेवजी के चरणों में प्रणाम करता हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री नारदजी ने भी शुकदेव को विरक्ति का उपदेश दिया। महाभारत के शान्तिपर्व (मोक्ष-धर्म-पर्व, क्षर-अक्षर-महिमा) अध्याय ३०९ में शुकदेवजी को वैराग्य उत्पन्न होने की कथा और अध्याय ३१०-३२० तक शुकचरित का वर्णन है। शुकदेव को ज्ञान सीखने के लिए मिथिला नरेश जनक के पास भेजा गया जहाँ उनकी कठिन परीक्षा ली गई और अन्त में उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ। इसे प्राप्त कर वे अपने पिता भगवान व्यास के आश्रम बद्रीनाथ गये। अध्याय २३९ में शुक ने आध्यात्म विद्या के विस्तृत वर्णन का प्रश्न किया। इस प्रकरण में आई आध्यात्म सामग्री का जैसे कोई अन्त ही न हो भगवान् व्यासजी ने शुकदेवजी से आध्यात्म विद्या का पुनः विस्तृत वर्णन किया। इस तरह २४ अध्यायों में शुकदेवजी के प्रश्न तथा भगवान् व्यास के उत्तर के रूप में प्रज्ञादर्शन आध्यात्म विद्या का वर्णन किया गया है। यह आध्यात्म योग और आस्तिकदर्शन का बहुत ही अच्छा और सारगर्भित उपदेश है।

इस विरक्ति वर्णन में गीता और उपनिषदों के सार भाव भी उपलब्ध होते हैं।

यह रचना श्री स्वामीजी श्री श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर (वीणा महाराज) बदरिकाश्रम की अनुपम कृति है। श्री पर्वतीकरजी परम भागवत संत हैं। ये बहुत ही उच्चकोटि के वीणावादक, त्रिकाल सन्ध्योपासक परम भगवद्भक्त हैं। इनकी भाषा 'संतई' है, जो वर्तमान प्रचलित हिन्दी से भिन्न है।

महाराष्ट्र के प्राचीन भक्तों एवं महात्माओं की रचनाएँ प्रायः इसी भाषा में हुई है। यह भाषा बड़ी ही सुबोध एवं सरल है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री महाराज ने समस्त श्रीमद्भागवत की इसी भाषा में काव्यात्मक रचना की है। इनके द्वारा प्रणीत "श्रीभाव-भगवद्गीता" नामक हिन्दी काव्य भी, जो गीता का अनुवाद है, बहुत प्रसिद्ध है। श्री शुकदेवजी का वर्णन इनकी रचना में —

तब शुकदेव तहाँ प्रकटे हैं आत्मानन्दी सुर सम रूप।
अवधूत ही स्त्री बाल सह घिरे स्त्रीमोहक स्मित सुन्दर रूप ॥ १ ॥

लखत उठे मुनि, प्रणाम पूजन कर नृप उन्हें बिठाते हैं।
तारों में शशिसम उनके पग सिर रख नृप अस कहते हैं ॥ २ ॥

यह सन्दर्भ 'श्री राघवेन्द्र स्वामी मिशन' की तरफ से प्रकाशित किया जा रहा है – श्री राघवेन्द्र स्वामीजी प्रह्लादजी के अवतार माने जाते हैं। उनकी बृन्दावन मन्त्रालय में इस प्रकार महिमा है —

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्य-धर्मरताय च।
भजताम् कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे ॥ १ ॥

आपादमौलिपर्यन्तम् गुरूणामाकृतिं स्मरेत्।
तेन विघ्नाः प्रणश्यन्ति, सिध्यन्ति च मनोरथाः ॥ २ ॥

यह परोपकारी संस्था है, इसमें सात्विकरूप से भक्तिवर्धक साहित्य संगीत एवं नये-नये आविष्कारों का प्रयोग किया जा रहा है।

आप महानुभावों से प्रार्थना है कि इसके सदस्य बनकर सहयोग करें।

वैद्य कन्हैयालाल भेडा
बम्बई-६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री राघवेन्द्र स्वामी मिशन, बम्बई.

सदस्यता शुल्क

१. संरक्षक	—	रु.	११११–००
२. आजीवन	—	रु.	१११–००
३. वार्षिक	—	रु.	११–००

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री स्वामीजी की अन्य कृतियाँ

१. श्रीमद्भागवत-गान (दशमस्कन्ध)

२. श्रीमद्भागवत (संतई भाषा में) सम्पूर्ण

३. नादप्रभा

४. रागसुधा

५. ताल-सुधा

६. श्रीभाव-भगवद्गीता

७. बद्रीनाथ कीर्तन···आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

卐 शुक-विरक्तिः 卐

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच

कथं निर्वेदमापन्नः शुको वैयासकिः पुरा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

अव्यक्त-व्यक्त-तत्त्वानां निश्चयं बुद्धिनिश्चयम् ।
वक्तुमर्हसि कौरव्य देवस्याजस्य या कृतिः ॥ २ ॥

भीष्म उवाच

प्राकृतेन सुवृत्तेन चरन्तमकुतोभयम् ।
अध्याप्य कृत्स्नं स्वाध्यायमन्वशाद् वै पिता सुतम् ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

धर्मं पुत्र ! निषेवस्व सुतीक्ष्णौ च हिमातपौ ।
क्षुत्पिपासे च वायुं च जय नित्यं जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

सत्यमार्जवमक्रोधमनसूयां दमं तपः ।
अहिंसां चानृशंस्यं च विधिवत् परिपालय ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहे युधिष्ठिर

कहे युधिष्ठिर भीष्महि से "कस वैरागी शुकदेव बने ।
व्यासपूत का चरित्र सुनने मोय कुतूहल बहुत बने ॥ १ ॥

जन्म रहित नारायण का जो कार्य आपने जाना है ।
कार्य तथा कारण ब्रह्म ही आपसे सुनना है" ॥ २ ॥

कहे भीष्म

कहे भीष्म 'निजपूत एक हि को निर्भय विचरत देखत है ।
उन्हें व्यास पितु वेद पढ़ाकर अस उपदेश हि देवत है' ॥ ३ ॥

कहे व्यास

व्यास कहे, 'सुत ! धर्म राखते सब इन्द्रिय का जय करना ।
सर्दी-गरमी, भूख-प्यास अरु वायु का भी जय करना ॥ ४ ॥

पालन करना सत्य, सरलता, क्रोधहीनता विधि से सब ।
तथा तपस्या अनसूया दम, अनृशंसता, विधि से सब ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्ये तिष्ठ रतो धर्मे हित्वा सर्वमनार्जवम् ।
देवतातिथिशेषेण मात्रां प्राणस्य संलिह ॥ ६ ॥

फेनमात्रोपमे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते ।
अनित्ये प्रियसंवासे कथं स्वपिषि पुत्रक ॥ ७ ॥

अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु ।
अन्तरं लिप्समानेषु बालस्त्वं नावबुध्यसे ॥ ८ ॥

अहःसु गण्यमानेषु क्षीयमाणे तथाऽऽयुषि ।
जीविते लिख्यमाने च किमुत्थाय न धावसि ॥ ९ ॥

ऐहलौकिकमीहन्ते मांसशोणितवर्धनम् ।
पारलौकिककार्येषु प्रसुप्ता भृशनास्तिकाः ॥ १० ॥

धर्माय येऽभ्यसूयन्ति बुद्धिमोहान्विता नराः ।
अपथा गच्छतां तेषामनुयाताऽपि पीड्यते ॥ ११ ॥

ये तु तुष्टाः श्रुतिपरा महात्मानो महाबलाः ।
धर्म्यं पन्थानमारूढास्तानुपास्स्व च पृच्छ च ॥ १२ ॥

उपधार्य मतं तेषां बुधानां धर्मदर्शिनाम् ।
नियच्छ परया बुद्ध्या चित्तमुत्पथगामि वै ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय अनार्जव तज, सत धर्म हि रत हो, आयु विताना है।
सुर अरु अतिथि प्रसाद शेष हि जीवन रखने पाना है॥ ६॥

देह फेन सम होवे जब, अरु जीव, पक्षिसम, करे निवास।
साधे नहि पुरुषारथ क्यों तुम ? अनित्य है जब प्रिय सहवास॥ ७॥

कामादिक रिपु जागत, नित सब दोष तुम्हारे खोज रहे।
बालक हो तुम, सो, उनका यह कारज ना कछु समझ रहे॥ ८॥

गणत सभी दिन, आयु क्षीण, अरु जीवन बीतत देखत हो।
फिर भी सुर अरु गुरूजी के क्यों शरणागत ना होवत हो॥ ९॥

रुधिर, मांस का बढना नास्तिक जन ही जग में चाहत हैं।
वे परलोक हि के कार्यों में सदा प्रसुप्त ही होवत हैं॥ १०॥

कुपथगामि जन मूढबुद्धि के, द्वेष धर्म का करते हैं।
उनका जो अनुसरण करे सो, वे भी पीडित होते हैं॥ ११॥

उपासना कर, धर्म बूझना, उनसे ही, जो धार्मिक हैं।
महाबली, सन्तुष्ट, महात्मा वेदों के जो मार्मिक हैं॥ १२॥

उन्हीं धर्मदर्शी पण्डित के मत को उत्तम हिय रखके।
नियमित करना उत्पथगामी चित को बुद्धि से लखके॥ १३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आद्यकालिकया बुद्ध्या दूरे श्व इति निर्भयाः ।
सर्वभक्ष्या न पश्यन्ति कर्मभूमिमचेतसः ॥ १४ ॥

धर्मं निःश्रेणिमास्थाय किंचित् किंचित् समारुह ।
कोषकारवदात्मानं वेष्टयन्नानुबुध्यसे ॥ १५ ॥

नास्तिकं भिन्नमर्यादं कूलपातमिव स्थितम् ।
वामतः कुरु विस्रब्धो नरं वेणुमिवोद्धृतम् ॥ १६ ॥

कामं क्रोधं च मृत्युं च पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर ॥ १७ ॥

मृत्युनाभ्याहते लोके जरया परिपीडिते ।
अमोघासु पतन्तीषु धर्मपोतेन सन्तर ॥ १८ ॥

तिष्ठन्तं च शयानं च मृत्युरन्वेषते यदा ।
निर्वृतिं लभते कस्मादकस्मान्मृत्युनाशितः ॥ १९ ॥

सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ २० ॥

क्रमशः सञ्चितशिखो धर्मबुद्धिमयो महान् ।
अन्धकारे प्रवेष्टव्यं दीपो यत्नेन धार्यताम् ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग अचेतन सर्वभक्षि, "अब दिन दूजा अतिदूर" कहे।
निर्भय होकर कर्म भूमि का अवलोकन तब दूर रहे ॥ १४ ॥

धार्मिक सीढी धीरे चढ, आरूढ उसी पर होवत हैं।
कोषकार सम बाँधे आत्मा, तब कछु ना वे जानत हैं ॥ १५ ॥

मर्यादा जो भङ्ग करे अस नास्तिक जन को मत लखना।
उन्हें वांस उखड़े सम, बाईं ओर, निधडक नित रखना ॥ १६ ॥

काम क्रोध मृत्यु पञ्चेन्द्रिय जल की नदी को तरना है।
धर्ममयी नौका को ले तुम्हें जन्म दुर्ग को तरना है ॥ १७ ॥

निशि जब बीते, आयु हरते, जरा, मृत्यु से पीडित सब।
धर्मस्वरूपी पोत सहारे भवसागर तुम तरना तब ॥ १८ ॥

खोजे मृत्यु जब जन को जो सुखि बैठे या सोवत हैं।
मृत्युग्रस्त जन अकसमात तब सुखशान्ति कस पावत हैं ॥ १९ ॥

अर्थसञ्चयी काम हि से अतृप्त रहे तब मरण उन्हें।
भेडियी आ, जस भेड पकरती तस करता है हरण उन्हें ॥ २० ॥

अन्धकार में जाना है, तब धर्मबुद्धि का दीप लिये।
प्रयत्न-पूर्वक धारण करना धीरे उसे उज्ज्वल हि किये ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पतन् देहजालानि कदाचिदिह मानुषे ।
ब्राह्मण्यं लभते जन्तुस्तत्पुत्र परिपालय ॥ २२ ॥

ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं न कामार्थाय जायते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य त्वनुपमं सुखम् ॥ २३ ॥

ब्राह्मण्यं बहुभिरवाप्यते तपोभि-
स्तल्लब्ध्वा न रतिपरेण हेलितव्यम् ॥
स्वाध्याये तपसि दमे च नित्ययुक्तः
क्षेमार्थी कुशलपरः सदा यतस्व ॥ २४ ॥

अव्यक्तप्रकृतिरयं कलाशरीरः
सूक्ष्मात्मा क्षणत्रुटिशो निमेषरोमा ।
ऋत्वास्यः समबलशुक्लकृष्णनेत्रो
मासाङ्गो द्रवति वयोहयो नराणाम् ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा प्रसृतमजस्रमुग्रवेगं
गच्छन्तं सततमिहाव्यपेक्षमाणम् ।
चक्षुस्ते यदि न परप्रणेतृनेयं
धर्मे ते भवतु मनः परं निशाम्य ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुज जीव तनु अनेक पा, फिर भाग्य हि से है ब्राह्मण तन ।
सो तुम उसका पालन करना, पाये हो यह ब्राह्मण तन ॥ २२ ॥

यह ब्राह्मण तनु काम भोग के कारण जग में नहीं उपजा ।
यहाँ तपस्या कर परलोक हि सुख लेने को है उपजा ॥ २३ ॥

बहुत तपस्या करने पर ही मिलता ब्राह्मण जन्म यही
सो इसको पा विषयासक्त हि होकर खोना उचित नहीं ।
सदा जितेन्द्रिय रह, दम तप सह स्वाध्यायी नित होना है
मोक्षार्थी अरु कुशलपरायण यत्नवान नित होना है ॥ २४ ॥

मानव की अव्यक्त प्रकृति कला देहमय अश्व यही
स्वभाव के क्षण, त्रुटि अरु निमेष, उन अश्वों के रोम यही ।
ऋतु वदन हि कृष्ण शुक्ल दो पक्ष नेत्र ही उन्हें रहे
मास रूप तनु ले वह अश्व हि लखो निरन्तर दौड़ रहे ॥ २५ ॥

यही अवस्थारूपी घोड़े जो छिपकर नित दौड़ रहे
बड़ा वेग अदृश्य इन्हीं का यह यदि तुम अब देख रहे ।
फिर भी अन्धे के सम तुम्हारा नैन मूँदना ना होवे
तो परलोक हि के कारण, तब मन धार्मिक अब झट होवें ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये चात्र प्रचलितधर्मकाममत्ताः
क्रोशन्तः सततमनिष्टसम्प्रयोगाः ।
क्लिश्यन्तः परिगतवेदनाशरीरा
बह्वीभिः सुभृशमधर्मकारणाभिः ॥२७॥

राजा सदा धर्मपरः शुभाशुभस्य गोप्ता
समीक्ष्य सुकृतिनां दधाति लोकान् ।
बहुविधमपि चरति प्रविशति
सुखमनुपगतं निरवद्यम् ॥ २८ ॥

श्वानो भीषणकाया अयोमुखानि वयांसि
बलगृध्रकुलपक्षिणां च सङ्घाः ।
नरकदने रुधिरपा गुरुवचन-
नुदमुपरतं विशसन्ति ॥ २९ ॥

मर्यादा नियताः स्वयम्भुवा य इहेमाः
प्रभिनत्ति दशगुणा मनोऽनुगत्वात् ।
निवसति भृशमसुखं पितृविषय-
विपिनमवगाह्य स पापः ॥ ३० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित धर्म विषय में जो जन स्वेच्छाचारी रहते हैं।
पर-निन्दा रत अनिष्ट कार्य ही इस जग में जो करते है।
जाकर वे यमलोक यातना शरीर धारण करते हैं॥
वहुत अधर्म क्रिया के कारण क्लेश भोगते रहते हैं॥ २७॥

धर्म परायण सदा रहत नृप राज अपना करता है,
उच्च नीच वर्णों का पालक होकर सुकृत करता है।
पुण्यवान के लोक पाय वह शुभ कर्मों को वहुत करे
अनेक योनी में अनुपलब्ध निरवद्य सुख लाभ करे॥ २८॥

इस जग में जो माता पिता गुरुजन के वचन टारेगा।
वह मृत होकर देह छूटते घोर नरक में जावेगा।
तहाँ भयङ्कर कुत्ते, कौवे, लोहमुखी भी रहते हैं,
गीदड़ादि पंछी कीड़े भी उसका भक्षण करते हैं॥ २९॥

शौच, तुष्टि, तप, अपरिग्रह, व्रत, स्वाध्याय, अहिंसा भी
ईश्वर का प्रणिधान, सत्य, अस्तेय स्वयम्भू किये सभी।
यह मर्यादा दस जो पापी स्वेच्छा से न पालत है,
सो यमलोक हि वन में जाकर बड़ा दुःख वह भोगत है॥ ३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यो लुब्धः सुभृशं प्रियानृतश्च मनुष्यः
सततनिकृति-वञ्चनाभिरतिः स्यात् ।
उपनिधिभिरसुखकृत्स परमनिरयगो
भृशमसुखमनुभवति दुष्कृतकर्मा ॥ ३१ ॥

उष्णां वैतरणीं महानदी-
मवगाढोऽसिपत्रवनभिन्नगात्रः ।
परशुवनशयो निपतितो
वसति च महानिरये भृशार्त्तः ॥ ३२ ॥

महापदानि कत्थसे न चाप्यवेक्षसे परम् ।
चिरस्य मृत्युकारिकामनागतां न बुध्यसे ॥ ३३ ॥

प्रयाय्यतां किमास्यते समुत्थितं महद्भयम् ।
अतिप्रमाथि दारुणं सुखस्य संविधीयताम् ॥ ३४ ॥

पुरा मृतः प्रणीयते यमस्य राजशासनात् ।
त्वमन्तकाय दारुणैः प्रयत्नमार्जवे कुरु ॥ ३५ ॥

पुरा समूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यदुःखवित् ।
तवेह जीवितं यमो न चास्ति तस्य वारकः ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो लोभी जनप्रिय मिथ्या कह छल से चोरी करता है।
तथा अनेकों नीच कार्यरत ठगहारी भी करता है ॥
नीच कर्म करने वाला वह पापात्मा जब मृत होवे ।
नरक जाय के तहाँ भयङ्कर वहुप्रकार के दुख पावे ॥ ३१ ॥

वह दुष्टात्मा तहाँ ऊष्णजल वैतरणी में नाहत है ।
असि-पत्र वन में जाते तव देह विदीर्ण होवत है ॥
फिर यमदूत परशु के वन में उसको पकड़ सुलावत हैं।
वड़ा दुखी फिर वास उसी का महा नरक में होवत है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मादिक के स्थान लखत "हैं धन्य भया" अस तुम समझे ।
परम पद हि ना लखे, बुढ़ापा आय शीघ्र सो ना समझे ॥ ३३ ॥

सुख को दूर करे सो प्रगढ़ा, भय दारुण अत्यन्त यहाँ ।
मोक्ष साधने यत्न करो, क्यों बैंठे हो निश्चिन्त यहाँ ॥ ३४ ॥

शासन कारण मरने पर यम समीप जाना होता है ।
सो दारुण व्रत करना जासे अगला दुख मिट जावत है ॥ ३५ ॥

समूल बान्धव सह तव जीवन यमराज हि हर लेगा जब ।
दुख न जाने सो समर्थ यम को ना कोई रोकेगा तब ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराऽभिवाति मारुतो यमस्य यः पुरःसरः ।
पुरैक एव नीयसे कुरुष्व साम्परायिकम् ॥ ३७ ॥

पुरा स हि क्व एव ते प्रवाति मारुतोऽन्तकः ।
पुरा च विभ्रमन्ति ते दिशो महाभयागमे ॥ ३८ ॥

श्रुतिश्च संनिरुध्यते पुरा तवेह पुत्रक ।
समाकुलस्य गच्छतः समाधिमुत्तमं कुरु ॥ ३९ ॥

शुभाशुभे पुरा कृते प्रमादकर्मविप्लुते ।
स्मरन्पुरा न तप्यसे निधत्स्व केवलं निधिम् ॥ ४० ॥

पुरा जरा कलेवरं विजर्जरीकरोति ते ।
बलाङ्गरूपहारिणी निधत्स्व केवलं निधिम् ॥ ४१ ॥

पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसारथिः ।
प्रसह्य जीवितक्षये तपो महत्समाचर ॥ ४२ ॥

पुरा वृका भयङ्करा मनुष्यदेहगोचराः ।
अभिद्रवन्ति सर्वतो यतस्व पुण्यशीलने ॥ ४३ ॥

पुरान्धकारमेककोऽनुपश्यसि त्वरस्व वै ।
पुरा हिरण्मयान्नगान्निरीक्षसेऽद्रिमूर्धनि ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यम के आगे तुम्हें अकेले लेत वायु बह जावेगा।
सो तुम यत्न करो अस जासे परलोक हि हित होवेगा ॥ ३७ ॥

प्राण हरे तव अस वायु जो बहता सो अब कहाँ रहे।
तुम्हे महाभय तव भ्रान्ती कर दिशा बने सो कहाँ रहे ॥ ३८ ॥

श्रवणेन्द्रिय तव निरुद्ध होगी अन्त समय तुम जाते जब।
सो ही उत्तम समाधी साधन कर लेना तुम झट से अब ॥ ३९ ॥

प्रमाद से शुभ अशुभ कर्म ना सुमिरत आगे दुख पाना।
केवल आश्रयणीय समाधी अस साधत तुम सुख पाना ॥ ४० ॥

तनु को जर्जर करत बुढ़ापा, हरण करे बल, अङ्ग स्वरूप।
सो उसके पहिले अवलम्बन करना समाधि जो सुख रूप ॥ ४१ ॥

रोग सारथी बनकर मृत्यु बल से जीवन हरण करे।
सो उसके तव तनु भेदन के प्रथम हि तुम तप घोर करे ॥ ४२ ॥

क्रूर भेड़िये नर तनु-गोचर कामादिक भय रूप लिये।
सभी भाँति दौड़ेंगे सो पुण्य कमाओ, यत्न किये ॥ ४३ ॥

अन्धकार अरु गिरि पर पीले वृक्ष मरण के चिह्न सभी।
इकले ही तुम देखोगे सो, शीघ्र कीजियो पुण्य अभी ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरा कुसङ्गतानि ते सुहृन्मुखाश्च शत्रवः ।
विचालयन्ति दर्शनाद्धटस्व पुत्र यत्परम् ॥ ४५ ॥

धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चोरतः ।
मृतं च यन्न मुञ्चति समर्जयस्व तद्धनम् ॥ ४६ ॥

न तत्र संवियुज्यते स्वकर्मभिः परस्परम् ।
यदेव यस्य यौतकं तदेव तत्र सोऽश्नुते ॥ ४७ ॥

परत्र येन जीव्यते तदेव पुत्र दीयताम् ।
धनं यदक्षरं ध्रुवं समर्जयस्व तत् स्वयम् ॥ ४८ ॥

न यावदेव पच्यते महाजनस्य यावकम् ।
अपक्व एव यावके पुरा प्रलीयसे त्वर ॥ ४९ ॥

न मातृपुत्रबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः ।
अनुव्रजन्ति सङ्कटे व्रजन्तमेकपातिनम् ॥ ५० ॥

यदेव कर्म केवलं पुरा कृतं शुभाशुभम् ।
तदेव पुत्र सार्थिकं भवत्यमुत्र गच्छतः ॥ ५१ ॥

हिरण्यरत्नसञ्चयाः शुभाशुभेन सञ्चिताः ।
न तस्य देहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः ॥ ५२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुहृत समान कुसङ्गी रिपु लख, तव बुद्धी ना विचलित हो।
सो हे तात ! उसे ही खोजे परम वस्तु जो तव हित हो ॥ ४५ ॥

राजा का अरु चोरों का भी भय जा पर नहि ऐसो धन।
मरने पर भी ना छूटे, हे तात ! कमाओ ऐसो धन ॥ ४६ ॥

निज कर्महि से प्राप्त भया धन परलोक भी जो आवेगा।
यहाँ कमाया, जिसने वही वहाँ भोगने पावेगा ॥ ४७ ॥

दान करो वही धन जो परलोक हि में उपजीव्य रहे।
तात ! कमाओ वही धन जो अविनाशी अरु नित्य रहे ॥ ४८ ॥

महाजनों का खाया अन्न हि जब तक ना पच पावेगा।
उतने अल्प समय में मरण हि आय उठा ले जावेगा ॥ ४९ ॥

पड़ा अकेला सङ्कट में परलोक अनाथ हि जावत है।
तब न मातु सुत बान्धव परिचित प्रिय भी साथी होवत है ॥ ५० ॥

जो कछु कर्म शुभाशुभ पहले किया भया सो रहता है।
मानव जब परलोक जाय तव साथ वही इक रहता है ॥ ५१ ॥

कर्म शुभाशुभ से सोना अरु रत्नादिक जो अर्थ बने।
अन्त समय में किसी कार्य के साधक ना, वह, व्यर्थ बने ॥ ५२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परत्रगामिकस्य ते कृताकृतस्य कर्मणः ।
न साक्षि आत्मना समो नृणामिहास्ति कश्चन ॥ ५३ ॥

मनुष्यदेहशून्यकं भवत्यमुत्र गच्छतः ।
प्रविश्य बुद्धिचक्षुषा प्रदृश्यते हि सर्वशः ॥ ५४ ॥

इहाग्निसूर्यवायवः शरीरमाश्रितास्त्रयः ।
त एव तस्य साक्षिणो भवन्ति धर्मदर्शिनः ॥ ५५ ॥

अहर्निशेषु सर्वतः स्पृशत्सु सर्वचारिषु ।
प्रकाशगूढवृत्तिषु स्वधर्ममेव पालय ॥ ५६ ॥

अनेकपारिपन्थिके विरूपरौद्रमक्षिके ।
स्वमेव कर्म रक्ष्यतां स्वकर्म तत्र गच्छति ॥ ५७ ॥

न तत्र संविभज्यते स्वकर्मणा परस्परम् ।
तथा कृतं स्वकर्मजं तदेव भुज्यते फलम् ॥ ५८ ॥

यथाप्सरोगणाः फलं सुखं महर्षिभिः सह ।
तथाऽऽप्नुवन्ति कर्मजं विमानकामगामिनः ॥ ५९ ॥

यथेह यत्कृतं शुभं विपाप्मभिः कृतात्मभिः ।
तदाप्नुवन्ति मानवास्तथा विशुद्धयोनयः ॥ ६० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत, अकृत, कर्मों को कर परलोक जीव जब जाता है।
आत्मा समान उसका साक्षी कोई भी ना होता है ॥ ५३ ॥

जीव जाय परलोक, देह विन, साक्षी चेतन रहता है।
ज्ञान नेत्र से दिय में ही सब उसे दीखते रहता है ॥ ५४ ॥

इस जग मो तनु को अवलम्बन कर वायु, अग्नि रवि रहते हैं।
ये ही साक्षी धर्मदर्शि परलोक जाय तब रहते हैं ॥ ५५ ॥

निश दिन तब छह शत्रु प्रकाशित, गूढ भाव से परसत हैं।
सो तुम उन कर्मों को करना स्वधर्म को जो सम्मत हैं ॥ ५६ ॥

काट खाय सो क्रूर जीव परलोक पथ हि वह होवत हैं।
साथ आय सो स्वकर्म करना जो निजि हित के होवत हैं ॥ ५७ ॥

कर्म शुभाशुभ यहाँ किये सो सङ्ग जीव के ज़ावत हैं।
ना छोड़ परलोक जात वे निज फल भोग हि देवत हैं ॥ ५८ ॥

जैसे बड़ ऋषि तथा अप्सरा स्वर्ग सौख्य को भोगत हैं।
काम गामि शुभ कर्मों के तस निज कर्म हि से भोगत हैं ॥ ५९ ॥

शुद्ध योनि के पाप रहित जस यहाँ कर्म शुभ करते हैं।
परलोक हि में जीव उन्हीं के फल को पाया करते हैं ॥ ६० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रजापतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः ।
व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थधर्मसेतुभिः ॥ ६१ ॥

सहस्रशोऽप्यनेकशः प्रवक्तुमुत्सहाम ते ।
अबुद्धिमोहनं पुनः प्रभुर्निनाय पावकः ॥ ६२ ॥

गता त्रिरष्टवर्षता ध्रुवोऽसि पञ्चविंशकः ।
कुरुष्व धर्मसंचयं वयो हि तेऽतिवर्तते ॥ ६३ ॥

पुरा करोति सोऽन्तकः प्रमादगोऽमुखां चमूम् ।
यथा गृहीतमुत्थितस्त्वरस्व धर्मपालने ॥ ६४ ॥

यथा त्वमेव पृष्ठतस्त्वमग्रतो गमिष्यसि ।
तथा गतिं गमिष्यतः किमात्मना परेण वा ॥ ६५ ॥

यदेकपातिनां सतां भवत्यमुत्र गच्छताम् ।
भयेषु साम्परायिकं निधत्स्व केवलं निधिम् ॥ ६६ ॥

स कूलमूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यसङ्गवान् ।
न सन्ति यस्य वारकाः कुरुष्व धर्मसंनिधिम् ॥ ६७ ॥

इदं निदर्शनं मया तवेह पुत्र साम्प्रतम् ।
स्वदर्शनानुमानतः प्रवर्णितं कुरुष्व तत् ॥ ६८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म लोक या बृहस्पती या इन्द्र लोक भी जा कर के ।
परम गती को पाय गृहस्थी धर्म सेतु से जा कर के ॥ ६१ ॥

बोल सकूँ मैं वचन हजारों ऐसे ही उपदेश भरे ।
किन्तु अनुग्रह निग्रह कारक धर्म जीव को मोह करे ॥ ६२ ॥

हो तुम अब पच्चीस बरस के, बीते तब चौबीस बरस ।
करो धर्म सञ्चय, झट तब आयू बीते वरस बरस ॥ ६३ ॥

अन्तक प्रमाद गृह का जब तक इन्द्रिय ना निष्कार्य क़रे ।
उद्योगी बन तव तनु तब तक झट धार्मिक निजि कार्य करे ॥ ६४ ॥

आत्म ग्यान सह जाना आगे या पीछे जब तुम को ही ।
कौन प्रयोजन है तव तनु या दुसरे से तब तुम को ही ॥ ६५ ॥

भय प्रगटत, परलोक, देह तज, इक्ले ही जब जाना है ।
कमा रखो, शुभ ग्यान, कर्म तव, जो हितकर हि खजाना है ॥ ६६ ॥

सङ्ग रहित मृत्यू का सबको, हरना, कभी न टाला जाय ।
सो ही शुभ कर्मों को करते, धर्म अपना, पाला जाय ॥ ६७ ॥

निजदर्शन, अनुमान सहारे, योग्य सो हि मैं वचन कहा ।
सो, हे सुत ! वैसा ही करना, जैसा मैं सब तुम्हें कहा ॥ ६८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दधाति यः स्वकर्मणा ददाति यस्य कस्यचित् ।
अबुद्धिमोहजैर्गुणैः स एक एव युज्यते ॥ ६९ ॥

श्रुतं समस्तमश्नुते प्रकुर्वतः शुभाः क्रियाः ।
तदेतदर्थदर्शनं कृतज्ञमर्थसंहितम् ॥ ७० ॥

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ ७१ ॥

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते
किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे ॥ ७२ ॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥ ७३ ॥

अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते ह बान्धवाः ।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा ॥ ७४ ॥

नास्तिकान् निरनुक्रोशान् नरान् पापमते स्थितान् ।
वामतः कुरु विस्रब्धं परं प्रेप्सुरतन्द्रितः ॥ ७५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देह पुष्टि के साधक, अरु जो, फल इच्छा से दान करें।
वे ही इकेले, मोहादिक अग्यान भरा दुःख पान करें ॥ ६९ ॥

शुभकर्मी ही, ज्ञान सुनत सर्वज्ञ भाव को पावत है।
कृतज्ञ जन को दिया भया, उपदेश हि सार्थक होवत है ॥ ७० ॥

ग्रामवास रति निज जन सह ही, रस्सी बन्धनकारी है।
पुण्यवान से कटे, पापी से यह न कटनेवारी है ॥ ७१ ॥

जब परलोक सिधारोगे तब जो तव संपद अरु धन है।
बान्धव, सुत, पौत्रादिक से, तब तुमको, कौन प्रयोजन है ॥
हिय आकाशहि आत्मा का, अन्वेषण तुम सदा करो।
कहाँ गये तव पितामहादिक, चिन्तन इसका सदा करो ॥ ७२ ॥

कार्य कल का आज हि करना तथा शाम का सुबह पूर्ण।
मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करे जन कार्य पूर्ण या रहा अपूर्ण ॥ ७३ ॥

देह नाश पर प्रेमी, निजि जन, मसान तक ही जावें साथ।
उसे अग्नि में डाल निवृत्त हि बनकर वे सब धोवें हाथ ॥ ७४ ॥

आलस तज, विश्वासी बन, रख चाह परमपद खोजन को।
पीछे रखना, पापी, नास्तिक, तथा निर्दयी सब जन को ॥ ७५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते ।
सुमहद्धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु ॥ ७६ ॥

अथेमं दर्शनोपायं सम्यग्यो वेत्ति मानवः ।
सम्यक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते ॥ ७७ ॥

न देहभेदे मरणं विजानतां
न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि ।
धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो
य एव धर्माच्च्यवते स मुह्यति ॥ ७८ ॥

प्रयुक्तयोः कर्मपथि स्वकर्मणोः
फलं प्रयोक्ता लभते यथाकृतम् ।
निहीनकर्मा निरयं प्रपद्यते
त्रिविष्टपं गच्छति धर्मपारगः ॥ ७९ ॥

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथाऽऽत्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ॥ ८० ॥

यस्य नोत्क्रामति मतिः स्वर्गमार्गानुसारिणी ।
तमाहुः पुण्यकर्माणमशोच्यं पुत्रबान्धवैः ॥ ८१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काल हि से, पीडित जन जब सब, नष्ट हो रहे इसी प्रकार।
तब तुम बड़ धीरज से करना धर्म कार्य को सभी प्रकार ॥ ७६ ॥

जो यह मुक्तिपथ का उपाय पूर्ण रूप से जानत है।
इस जग मों, निजि धर्म कर्म कर, परलोक हि सुख भोगत है ॥ ७७ ॥

जो जानत की, जीव न मरता, यदि तनु का ही होवे नाश।
शिष्टजनों के पथ में रहते, सो उनका भी, नहीं विनाश ॥
अपना धर्म बढ़ाते, सो ही, पण्डितजन कहलाते हैं।
निजी धर्म को छोड़, गिरे सो, मोहित्त जन कहलाते हैं ॥ ७८ ॥

कर्म मार्ग में, करे, प्रयोक्ता, जैसो कर्म, शुभाशुभ ही।
प्रयुक्त, पावे निज कर्मों के, तस, फल भोग, शुभाशुभ ही ॥
हीन कर्म को करने वाला, निरयगामि बन गिरता है।
धर्म कर्म को करने वाला, सुरपुर में जा तरता है ॥ ७९ ॥

मानव तनु सोपान स्वर्ग का, दुर्लभ, ऐसो जब पाये।
आत्म समाधी ही साधें फिर, भ्रष्ट न जासे बन पाये ॥ ८० ॥

जा की बुद्धी, धर्म न छोड़त, स्वर्ग मों होवत है।
सुत, बान्धव का शोक नहीं सो, पुण्यवान कहावत है ॥ ८१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्य नोपहता बुद्धिर्निश्चये ह्यवलम्बते ।
स्वर्गे कृतावकाशस्य नास्ति तस्य महद्भयम् ॥ ८२ ॥

तपोवनेषु ये जातास्तत्रैव निधनं गताः ।
तेषामल्पतरो धर्मः कामभोगानजानताम् ॥ ८३ ॥

यस्तु भोगान्परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत् ।
न तेन किंचिन्न प्राप्तं तन्मे बहु मतं फलम् ॥ ८४ ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ ८५ ॥

अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं तन्न पश्यामि यो मम ॥ ८६ ॥

न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि ।
स्वकृतैस्तानि यातानि भवाँश्चैव गमिष्यति ॥ ८७ ॥

इह लोके हि धनिनां स्वजनः स्वजनायते ।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवितामपि नश्यति ॥ ८८ ॥

संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः ।
ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च ॥ ८९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा की बुद्धी, रहत अवाधित, निश्चय करते स्थिर होवे ।
नहीं महाभय उसको ; स्वर्ग हि उसे ठिकाना फिर होवे ॥ ८२ ॥

जन्म, तपोवन में लेकर, जो, वहीं देह भी तजते हैं ।
काम भोग अनभिज्ञ, उन्हीं के धर्म, अल्प ही, रहते हैं ॥ ८३ ॥

भोग त्यागके, देह क्लेश सह, जिन का तप वड़ घोर रहे ।
मुझे, वही फल सम्मत है, जो, उन्हें न कुछ अप्राप्य रहे ॥ ८४ ॥

मात, पिता, सुत, नार, हजारों बनते हैं अरु बिखरत हैं ।
वे, अब किसके कौन रहे ? अरु हम भी, किसके होवत हैं ? ॥ ८५ ॥

मैं हूँ इकला, नहीं, किसीका मैं, अरु मेरा कोई भी ।
उसे, न देखूं, जिसका मैं अरु, जो है मेरा कोई भी ॥ ८६ ॥

तुमसे, उनका, नहीं कार्य, ना उनसे, तुम्हारा कार्य रहे ।
निज कर्म हि से, वे उपजे, निज कर्म हि से, तव गमन रहे ॥ ८७ ॥

इस जग में, धनिकों के स्वजन हि, स्वजन भाव को, मान रहे ।
दरिद्र नर के जीते भी, ना कोई, उसका स्वजन रहे ॥ ८८ ॥

प्रेमी नारी के कारण ही, अशुभ कर्म, नर करता है ।
इस जग में अरु परलोक हि में क्लेश उसीसे मिलता है ॥ ८९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्यति च्छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा ।
तत्कुरुष्व तथा पुत्र कृत्स्नं यत्समुदाहृतम् ॥ ९० ॥
तदेतत् संप्रदृश्यैव कर्मभूमिं प्रपश्यतः ।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता ॥ ९१ ॥
मासर्तुसंज्ञापरिवर्त्तकेन
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
स्वकर्मनिष्ठाफलसाक्षिकेन
भूतानि कालः पचति प्रसह्य ॥ ९२ ॥
धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते
बलेन किं येन रिपुं न बाधते ।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥ ९३ ॥

भीष्म उवाच

इदं द्वैपायनवचो हितमुक्तं निशम्य तु ।
शुको गतः परित्यज्य पितरं मोक्षदैशिकम् ॥ ९४ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पावकाध्ययनं नाम एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥ समाप्तः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखत हो, जब, जीव बने हैं, निज कर्म हि से, पीडित ही।
तब तुम करो, कहा मैं, तैसो, होगा उससे, तव हित ही ॥ ९० ॥
कर्मभूमि को देखत, इन सब बातों पर, जो, करें विचार।
परलोक हि में, सद्गति इच्छुक; वे जन, राखें, शुभ आचार ॥९१॥
ऋतु, मास, को, बदले सो रवि, अग्नीरूपी होवे जो।
जीवों के, निजकर्म फलोंका साक्षी रूपी होवे जो॥
तथा काल, दिन रात स्वरूपी, काठ हि को, जो, जला रहा।
सब भूतों को बल पूर्वक वो; इस अग्नी से, पका रहा ॥ ९२ ॥
नहीं भोग, या दान भी, जिससे; अस, धन से क्या लाभ रहे?
जा से शत्रु नहीं बाधित है, अस, बल से क्या लाभ रहे? ॥
नहीं धर्म आचार बने, अस, शास्त्र ग्यान का, क्या है लाभ?।
इन्द्रिय अपने वश ना हो अस जीवात्मा का, क्या है लाभ? ॥९३॥

भीष्म कहे

"अस द्वैपायन के हितकर वाक्य हि सुन करके।
गये मोक्ष-उपदेशक के घर शुकजी पितु को तज करके" ॥ ९४ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ

॥ श्री मन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्म पर्व का ३२१ वाँ अध्याय समाप्त ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि ३२५ तमः अध्यायः

भीष्म उवाच

स मोक्षमनुचिन्त्यैव शुकः पितरमभ्यगात् ।
प्राहाभिवाद्य च गुरुं श्रेयोऽर्थी विनयान्वितः ॥ १ ॥

मोक्षधर्मेषु कुशलो भगवान् प्रब्रवीतु मे ।
यथा मे मनसः शान्तिः परमा सम्भवेत्प्रभो ॥ २ ॥

श्रुत्वा पुत्रस्य तु वचः परमर्षिरुवाच तम् ।
अधीष्व पुत्र मोक्षं वै धर्मांश्च विविधानपि ॥ ३ ॥

पितुर्नियोगाज्जग्राह शुको धर्मभृतां वरः ।
योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैव भारत ॥ ४ ॥

स तं ब्राह्मया श्रिया युक्तं ब्रह्मतुल्यपराक्रमम् ।
मेने पुत्रं यदा व्यासो मोक्षधर्मविशारदम् ॥ ५ ॥

उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम् ।
स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलं मिथिलेश्वरः ॥ ६ ॥

पितुर्नियोगमादाय जगाम मिथिलां नृप ।
प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम् ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री मन्महाभारत के शान्तिपर्व का ३२५ अध्याय प्रारम्भ ॥

भीष्म कहे

"शुक, मोक्ष चाहते, पितु के निकट हि जावत हैं।
विस्मित हित इच्छुक वे पितु को प्रणाम कर, अस बोलत हैं" ॥ १ ॥
"मोक्ष धर्म दरसाने में, बड़ कुशल, आप हो, हे भगवन् !।
सो, मम, मन के शान्ति का ही उपाय कहना, अब, भगवन्" ! ॥ २ ॥
वेदव्यासजी, पुत्र वचन सुन, शुकजी से अस बोले तब।
"मोक्ष शास्त्र अरु धर्म शास्त्र सब करो अध्ययन मुझसे अब" ॥ ३ ॥
पितु की आज्ञानुसार, धार्मिक शुकदेव हि, तब सीखत हैं।
योग शास्त्र, अरु कपिल प्रभू के शास्त्र, सभी जो होवत हैं ॥ ४ ॥
ब्राह्मी श्री सह, ब्रह्म तुल्य, सुत पराक्रमी, जब देखत हैं।
वेदव्यासजी, शुक देव हि से, वाक्य हि तब, अस, बोलत हैं ॥ ५ ॥
कहे व्यासजी "मिथिला नृप के निकट जाइयो, हे सुत ! अब।
जनक राय तब, तहाँ कहेंगे, मोक्ष शास्त्र का अर्थ हि, सब" ॥ ६ ॥
हे राजन् ! शुक देव, तहां जब, पितु आज्ञा अस पावत हैं।
धर्म बूझने मोक्षपरायण नृप से, मिथिला जावत हैं ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उक्तश्च मानुषेण त्वं पथा गच्छेत्यविस्मितः ।
न प्रभावेण गन्तव्यमन्तरिक्षचरेण वै ॥ ८ ॥

आर्जवेणैव गन्तव्यं न सुखान्वेषिणा तथा ।
नान्वेष्टव्या विशेषास्तु विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ९ ॥

अहङ्कारो न कर्त्तव्यो याज्ये तस्मिन्नराधिपे ।
स्थातव्यं च वशे तस्य, स ते छेत्स्यति संशयम् ॥ १० ॥

स धर्मकुशलो राजा मोक्षशास्त्रविशारदः ।
याज्यो मम स यद्ब्रूयात् तत् कार्यमविशङ्कया ॥ ११ ॥

एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः ।
पद्भ्यां शक्तोऽन्तरिक्षेण क्रान्तुं पृथ्वीं ससागराम् ॥ १२ ॥

स गिरींश्चाप्यतिक्रम्य नदीतीर्थसरांसि च ।
वहुव्यालमृगाकीर्णा ह्यटवीश्च वनानि च ॥ १३ ॥

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतंवर्षमासदत् ॥ १४ ॥

स देशान् विविधान् पश्यँश्चीनहूणनिषेवितान् ।
आर्यावर्तमिमं देशमाजगाम महामुनिः ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाते समय, कहे पितु सुत से, "नभो मार्ग से मत जाना ।
विस्मित ना हो, मानव पथ से, सब जावें तस तुम जाना ॥ ८ ॥

सुख ना चाहत, सरल भाव रख, ना देखत अति, विषयों को ।
सावध जाना, क्यों कि जन आसक्त बने लख विषयों को ॥ ९ ॥

नृप के सङ्ग, न अहंकार कर, वश में रहना तुम उनके ।
दूर करेंगे तब, वे राजा, संशय सब ही, तव मन के ॥ १० ॥

मोक्ष विशारद, धार्मिक राजा, मम यजमान हि होवत हैं ।
सो, तुम, शंका तज के करना, वें तुमसे जस बोलत हैं" ॥ ११ ॥

अस, धार्मिक पितु आज्ञा सुन कर, शुक मुनि मिथिला नगर गये ।
नभोमार्ग से जा सकने पर, भूपथ से ही चलत गये ॥ १२ ॥

गिरि, नदी, तीरथ, अरु सर्पों से भरे वनों में होकर के ।
जावत हैं शुक, अनेक जंगल, तालाबों से होकर के ॥ १३ ॥

धीरे धीरे, वर्ष इलावृत, तथा हैमवंत, अरु हरि वर्ष ।
चलते चलते इन्हें छोड़, शुक देव हि आये, भारत वर्ष ॥ १४ ॥

महामुनि, वे चीन, हूण, इत्यादि जाति से सेवित हैं ।
विविध देश सब, देखत, देखत, आर्यावर्त हि आवत हैं ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितुर्वचनमाज्ञाय तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
अध्वानं सोऽतिचक्राम खेचरः खे चरन्निव ॥ १६ ॥

पत्तनानि च रम्याणि स्फीतानि नगराणि च ।
रत्नानि च विचित्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १७ ॥

उद्यानानि च रम्याणि तथैवायतनानि च ।
पुण्यानि चैव रत्नानि सोऽत्यक्रामदथाध्वगः ॥ १८ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन विदेहानाससाद ह ।
रक्षितान्धर्मराजेन जनकेन महात्मना ॥ १९ ॥

तत्र ग्रामान् बहून् पश्यन् बह्वन्नरसभोजनान् ।
पल्लीघोषान् समृद्धांश्च बहुगोकुलसङ्कुलान् ॥ २० ॥

स्फीतांश्च शालियवसैर्हंससारससेवितान् ।
पद्मिनीभिश्च शतशः श्रीमतीभिरलंकृतान् ॥ २१ ॥

स विदेहानतिक्रम्य समृद्धजनसेवितान् ।
मिथिलोपवनं रम्यमाससाद समृद्धिमत् ॥ २२ ॥

हस्त्यश्वरथसंकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ।
पश्यन्नपश्यन्निव तत्समतिक्रामदच्युतः ॥ २३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितु के आज्ञानुसार, शुकजी, उसी विषय को ध्यावत हैं।
अन्तरिक्ष में रवि विचरे, तस, अविश्रान्त, वे विचरत हैं॥ १६॥

नगर, ग्राम, बहु रम्य, रत्न भी विचित्र, वे सब देखत हैं।
पर, सब तुच्छ हि मानत, उनकी ओर, ध्यान ना देवत हैं॥ १७॥

देवालय, रमणीक बगीचे, पवित्र तीर्थों को लखकर।
आगे आगे जावत हैं शुक, अनासक्त निज चित रखकर॥ १८॥

स्वल्प समय में चलते चलते शुक, विदेह ही पहुँचत हैं।
जा को जनक महात्मा धार्मिक राजा बनकर चालत हैं॥ १९॥

अन्न रसादिक भोजन वस्तु, भरे भये, सब ग्राम तहाँ।
घोष, पल्लियों यह गौशाले, समृद्ध लखते शुकहि तहाँ॥ २०॥

भरा धान्य अरु तृणादि से, अरु सारस, हंस भी रहे तहाँ।
तथा सैकड़ों कमलिनियाँ अरु समलंकृत श्रीमान् तहाँ॥ २१॥

अस, समृद्ध जनों से सेवित, विदेह को, शुक लाँघत हैं।
फिर, समृद्ध अरु रम्य रहे सो, मिथिला उपवन, पहुँचत हैं॥ २२॥

हाथी, घोड़े, नर, नारी सह, मिथिला समृद्ध रहते भी।
बढे जितेन्द्रिय शुक आगे ही, नहि रमते, सब लखते भी॥ २३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनसा तं वहन् भारं तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
आत्मारामः प्रसन्नात्मा मिथिलामाससाद ह ॥ २४ ॥

तस्या द्वारं समासाद्य निःशङ्कः प्रविवेश ह ।
तत्रापि द्वारपालास्तमुग्रवाचा न्यषेधयन् ॥ २५ ॥

तथैव च शुकस्तत्र निर्मन्युः समतिष्ठत ।
न चातपाध्वसंतप्तः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः ॥ २६ ॥

प्रताम्यति ग्लायति वा नापैति च तथाऽऽतपात् ।
तेषां तु द्वारपालानामेकः शोकसमन्वितः ॥ २७ ॥

मध्यं गतमिवादित्यं दृष्ट्वा शुकमवस्थितम् ।
पूजयित्वा यथान्यायमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ २८ ॥

प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां द्वितीयां राजवेश्मनः ।
तत्रासीनः शुकस्तात मोक्षमेवान्वचिन्तयत् ॥ २९ ॥

छायायामातपे चैव समदर्शी महाद्युतिः ।
तं मुहुर्तादिवागम्य राज्ञो मन्त्री कृताञ्जलिः ॥ ३० ॥

प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां तृतीयां राजवेश्मनः ।
तत्रान्तःपुरसम्बद्धं महच्चैत्ररथोपमम् ॥ ३१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितु उपदेश, मोक्ष का चिन्तन, मन के मन ही करत भये।
प्रसन्न चित, आत्माराम हि शुक, मिथिला नगरी पहुँच गये ॥ २४ ॥

राज भवन के द्वार आय, वे, भीतर जाना चाहत हैं।
द्वारपाल तब उन्हें डांट कर, भीतर जाने रोकत हैं ॥ २५ ॥

खड़े वहीं शुक, क्रोध विना, नहि धूप, थकावट, दुःख उन्हें।
निर्विकार वे खड़े, न ग्लानी, भूख प्यास, का दुःख उन्हें ॥ २६ ॥

हटे नहीं वे, धूप ही से, अस निश्चल उनको, लख करके।
द्वारपालकों में से, इक तब, दुखि हो, करुणा रख करके ॥ २७ ॥

सूर्य दुपहरी के सम शुकजी ठाडे, अस वह देखत हैं।
निकट आय के हाथ जोड़, विधिपूर्वक उनको पूजत हैं ॥ २८ ॥

राज भवन से दूसरी कक्षा में, उनको ले जावत हैं।
वहीं बैठ, शुक, समदर्शी मुनि, मोक्ष विषय ही ध्यावत हैं ॥ २९ ॥

इक मुहूर्त के भीतर ही फिर मन्त्री नृप को आवत हैं।
धूप, छांव सम माने ऐसे शुकजी को कर जोरत हैं ॥ ३० ॥

उन्हें तीसरी कक्षा में वे आदर से ले जावत हैं।
अन्तःपुर के निकट जलाशय तरुवर फूले सोहत हैं ॥ ३१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुविभक्तजलाक्रीडं रम्यं पुष्पितपादपम् ।
शुकं प्रावेशयन्मन्त्री प्रमदावनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
स तस्यासनमादिश्य निश्चक्राम ततः पुनः ।
तं चारुवेषाः सुश्रोण्यस्तरुण्यः प्रियदर्शनाः ॥ ३३ ॥
सूक्ष्मरक्ताम्बरधरास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
संलापोल्लापकुशला नृत्यगीतविशारदाः ॥ ३४ ॥
स्मितपूर्वाभिभाषिण्यो रूपेणाप्सरसां समाः ।
कामोपचारकुशला भावज्ञाः सर्वकोविदाः ॥ ३५ ॥
परं पञ्चाशतं नार्यो वारमुख्याः समाद्रवन् ।
पाद्यादीनि प्रतिग्राह्य पूजया परयाऽर्चयन् ॥ ३६ ॥
कालोपपन्नेन तदा स्वाद्वन्नेनाभ्यतर्पयन् ।
तस्य भुक्तवतस्तात तदन्तःपुरकाननम् ॥ ३७ ॥
सुरम्यं दर्शयामासुरेकैकश्येन भारत ।
क्रीडन्त्यश्च हसन्त्यश्च गायन्त्यश्चापि ताः शुभम् ॥ ३८ ॥
उदारसत्त्वं सत्त्वज्ञाः स्त्रियः पर्यचरँस्तथा ।
आरणेयस्तु शुद्धात्मा निःसंदेहः स्वकर्मकृत् ।
वश्येन्द्रियो जितक्रोधो न हृष्यति न कुप्यति ॥ ३९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रम्य चैत्ररथ सम सुन्दर अरु विस्तृत प्रमदावन होवे ।
नृप के मन्त्री शुकजी को फिर उस वन मों ही ले जावे ॥ ३२ ॥
उन्हें वहीं आसन देने को कहकर मन्त्री जावत हैं ।
तहां युवतियाँ सुन्दर मनहर वेषाभूषित होवत हैं ॥ ३३ ॥
ऊँचे स्तन के, लालवस्त्र अति सूक्ष्म, हिरण्मय आभूषण ।
धरें युवतियाँ, प्रवीण करने नृत्य गीत अरु संभाषण ॥ ३४ ॥
रहे अप्सरा सम सुन्दर वे, हँसन बोलने में प्रवीण हैं ।
भाव, तथा सब विषय जानते, काम कला में प्रवीण हैं ॥ ३५ ॥
अस पचास नव यौवन की, शुक मुनि के निकट ही आ करके ।
उन्हें पूजते आदर से वे, पाद्य, अर्घ्य, सब देकर के ॥ ३६ ॥
यथा समय पर मधुर अन्न दे, उन्हें तृप्त ही करते हैं ।
उन्हें जिमाकर, प्रमदावन में उन्हें साथ ले फिरते हैं ॥ ३७ ॥
इकली, इकली, ही वन मों शुक साथ लिये, दरसावत हैं ।
मनहर गावते, हसत-खेलते, उदार शुक को सेवत है ॥ ३८ ॥

शुद्ध, जितेन्द्रिय, स्वकर्मरत, शुक, अरणी से जो प्रकट भये ।
नहीं क्रोध या शङ्का, तिससे, ना हर्षित या कुपित भये ॥ ३९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मै शय्यासनं दिव्यं देवार्हं रत्नभूषितम् ।
स्पर्ध्यास्तरणसंकीर्णं ददुस्ताः परमस्त्रियः ॥ ४० ॥

पादशौचं तु कृत्वैव शुकः सन्ध्यामुपास्य च ।
निषसादासने पुण्ये तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥ ४१ ॥

पूर्वरात्रे तु तत्रासौ भूत्वा ध्यानपरायणः ।
मध्यरात्रे यथान्यायं निद्रामाहारयत् प्रभुः ॥ ४२ ॥

ततो मुहुर्तादुत्थाय कृत्वा शौचमनन्तरम् ।
स्त्रीभिः परिवृतो धीमान् ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ ४३ ॥

अनेन विधिना कार्ष्णिस्तदहःशेषमच्युतः ।
तां च रात्रिं नृपकुले वर्तयामास भारत ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्म-पर्वणि शुकोत्पत्तौ पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३२५] समाप्तः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही वार-वनिता फिर, शुक को, देवें शय्या आसन दिव्य ।
बढिया वस्त्र, रत्न से भूषित, सुरगण के जस होवे दिव्य ॥ ४० ॥

हाथ पैर धो, संधिकाल शुक, संध्यावंदन करते हैं ।
पवित्र आसन पर बैठे वे मोक्ष हि चिन्तन करते हैं ॥ ४१ ॥

पूर्व रात्रि में ध्यान परायण होकर चिन्तन वे करते ।
और नहीं कछु ध्यान, मोक्ष का केवल चिन्तन वे करते ॥ ४२ ॥

योगशास्त्र के नियमानुसार, मध्य रात जब आवत है ।
योगी शुकजी निद्रा लेने, मध्य रात में सोवत है ॥
इक मुहूर्त वे सोकर उठके, शौच-कार्य सब किये भये ।
तहाँ युवतियों के बीच हि वे, बैठे ध्यानी बने भये ॥४३॥

हे राजन् ! अस व्यास पूत, शुक, धैर्यवान जो होवत है ।
राजभवन में, इक रात ओ दिन, विधिपूर्वक ही वितावत हैं ॥४४॥

॥ इति श्रीमन्महाभारत का ३२५वाँ अध्याय समाप्त ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ अध्याय ३२६ प्रारम्भ ॥

भीष्म उवाच

ततः स राजा जनको मन्त्रिभिः सह भारत ।
पुरः पुरोहितं कृत्वा सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ १ ॥

आसनं च पुरस्कृत्य रत्नानि विविधानि च ।
शिरसा चार्घ्यमादाय गुरुपुत्रं समभ्यगात् ॥ २ ॥

स तदाऽऽसनमादाय बहुरत्नविभूषितम् ।
स्पर्ध्यास्तरणसंस्तीर्णं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ ३ ॥

पुरोधसा संगृहीतं हस्तेनालभ्य पार्थिवः ।
प्रददौ गुरुपुत्राय शुकाय परमार्चितम् ॥ ४ ॥

तत्रोपविष्टं तं कार्ष्णिं शास्त्रतः प्रत्यपूजयत् ।
पाद्यं निवेद्य प्रथममर्घ्यं गां च न्यवेदयत् ॥ ५ ॥

स च तां मन्त्रवत्पूजां प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।
प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकाद् द्विजसत्तमः ॥ ६ ॥

गां चैव समनुज्ञाय राजानमनुमान्य च ।
पर्यपृच्छन्महातेजा राज्ञः कुशलमव्ययम् ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ अध्याय ३२६ प्रारम्भ ॥

भीष्म कहे

" फिर जनक राज सब मन्त्रीजन को लेकर के ।
तथा पुरोहित, अरु अन्तःपुर जन सब आगे ले करके " ॥ १ ॥

विविध रत्न, अरु आसन, अर्घ्य हि, अपने शिर पर धारे हैं ।
पूजा करने, निज गुरुसुत शुक मुनि के पास पधारे हैं ॥ २ ॥

वस्त्र बहुत ही मूल्यवान, अरु बहु रत्नों से भूषित है ।
पुरोहितों से धरे भये जो, अरु जो उत्तम पूजित है ॥ ३ ॥

ऐसो सबसे उत्तम आसन, जनक राय निज हाथ लिये ।
बड आदर से अपने गुरु सुत शुकदेव हि के हाथ दिये ॥ ४ ॥

तिस आसन पर बैठे शुक को जनक राय तब पूजत हैं ।
प्रथम पाद्य फिर अर्घ्य देत फिर गैय्या दान हि देवत हैं ॥ ५ ॥

जनक राय से अर्पित पूजा मन्त्रयुक्त अरु विधिपूर्वक ।
व्यासपूत शुक ग्रहण किये हैं, आदर से सब विधिपूर्वक ॥ ६ ॥

द्विजसत्तम अति तेजस्वी शुक पूजा प्रतिग्रह अरु गौदान ।
ग्रहण करत राजा से पूछे कुशल प्रश्न कर बड़ सम्मान ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनामयं च राजेन्द्र शुकः सानुचरस्य ह ।
अनुशिष्टस्तु तेनासौ निषसाद सहानुगः ॥ ८ ॥

उदारसत्त्वाभिजनो भूमौ राजा कृताञ्जलिः ।
कुशलं चाव्ययं चैव पृष्ट्वा वैयासकिं नृपः ।
किमागमनमित्येवं पर्यपृच्छत पार्थिवः ॥ ९ ॥

शुक उवाच

पित्राऽहमुक्तो भद्रं ते मोक्षधर्मार्थकोविदः ।
विदेहराजो याज्यो मे जनको नाम विश्रुतः ॥ १० ॥

तत्र गच्छस्व वै तूर्णं यदि ते हृदि संशयः ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा स ते छेत्स्यति संशयम् ॥ ११ ॥

सोऽहं पितुर्नियोगात्त्वामुपप्रष्टुमिहागतः ।
तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

किं कार्यं ब्राह्मणेनेह मोक्षार्थश्च किमात्मकः ।
कथं च मोक्षः प्राप्तव्यो ज्ञानेन तपसाऽथवा ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदार राजा हाथ जोड़कर ठाडे तब शुक पूछत हैं ।
फिर बैठे परिवार सहित वे, जब शुक आज्ञा देवत हैं ॥ ८ ॥

ऐसो सात्त्विक अमानि मानद जनक राय जो होवत है ।
तहाँ व्यास सुत शुकजी से तब कृताञ्जली कर पूछत है ॥
बड़ी नम्रता धरे अनामय कुशल प्रश्न सब पूछ रहे ।
तथा उन्हीं के आने के भी कारण को वे पूछ रहे ॥ ९ ॥

शुक कहते

"तव मङ्गल हो प्रभु ! मम पितु ऐसो मुझे कहे ।
जनक राय यजमान हमारे मोक्ष धर्म में कुशल रहे ॥ १० ॥

यदि तव मन में प्रवृत्ति का या निवृत्ति का भी हो संशय ।
तो तुम उनके निकट हि जाना हर देंगे वो तव संशय ॥ ११ ॥

सो पितु आज्ञा से आया तव निकट पूछने मोक्ष विषय ।
कृपया मुझको समझा देना ठीक-ठीक सब मोक्ष विषय ॥ १२ ॥

इस जग में कर्तव्य द्विजों का तथा मोक्ष भी कैसे है ? ।
ज्ञान तपस्या से प्राप्ति जन करे मोक्ष की कैसे है ?" ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनक उवाच

यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह जन्मप्रभृति तच्छृणु ।
कृतोपनयनस्तात भवेद्वेदपरायणः ॥ १४ ॥

तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण वा विभो ।
देवतानां पितॄणां चाप्यनृणो ह्यनसूयकः ॥ १५ ॥

वेदानधीत्य नियतो दक्षिणामपवर्ज्य च ।
अभ्यनुज्ञामथ प्राप्य समावर्तेत वै द्विजः ॥ १६ ॥

समावृत्तश्च गार्हस्थ्ये स्वदारनिरतो वसेत् ।
अनसूयुर्यथान्यायमाहिताग्निस्तथैव च ॥ १७ ॥

उत्पाद्य पुत्रपौत्रं तु वन्याश्रमपदे वसेत् ।
तानेवाग्नीन्यथाशास्त्रमर्चयन्नतिथिप्रियः ॥ १८ ॥

स वनेऽग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित् ।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा ब्रह्माश्रमपदे वसेत् ॥ १९ ॥

शुक उवाच

उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने निर्द्वन्द्वे हृदि शाश्वते ।
किमवश्यं निवस्तव्यमाश्रमेषु भवेत् त्रिषु ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनक कहे

"सुनियो ब्राह्मण को जन्म लिये क्या करना है।
ब्राह्मण का उपनयन होत फिर वेदाध्ययन हि करना है ॥ १४ ॥

करे तपस्या अरु गुरु सेवा ब्रह्मचर्य व्रत रखना है।
तजत असूया सुर-पितरों के ऋण से मुक्त हि बनना है ॥ १५ ॥

वेद पढत नित, उनको जब अध्ययन पूर्ण ही हो जावे।
गुरु आज्ञा से उन्हें दक्षिणा देकर अपने घर आवे ॥ १६ ॥

ग्रहस्थ बन, निज स्त्री में रत हो; निज घर का फिर कार्य करे।
बिना असूया रहकर विधि से अग्निहोत्र का कार्य करे ॥ १७ ॥

पुत्र पौत्र की उत्पत्ति कर, वानप्रस्थ व्रत लेना है।
अग्निहोत्रव्रत रखकर अतिथि प्रिय बन सेवा करना है ॥ १८ ॥

धार्मिक वनवासी द्विज विधि से आत्मा में फिर अग्नि लखे।
संन्यासाश्रम लेत, दुःख-सुख सम मानत वैराग्य रखे" ॥ १९ ॥

शुक कहते

निर्द्वन्द्व चित्त, विज्ञान ज्ञान से पूरण है।
तब क्या उसको तीनों आश्रम लेने का कछु कारण है ? ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतद्भवन्तं पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
यथा वेदार्थतत्त्वेन ब्रूहि मे त्वं जनाधिप ॥ २१ ॥

जनक उवाच

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत् ।
न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ॥ २२ ॥

गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते ।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत् ॥ २३ ॥

अनुच्छेदाय लोकानामनुच्छेदाय कर्मणाम् ।
पूर्वैराचरितो धर्मश्चातुराश्रम्यसंकटः ॥ २४ ॥

अनेन क्रमयोगेन बहुजातिषु कर्मणाम् ।
हित्वा शुभाशुभं कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते ॥ २५ ॥

भावितैः करणैश्चायं बहुसंसारयोनिषु ।
आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं वै प्रथमाश्रमे ॥ २६ ॥

तमासाद्य तु मुक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चितः ।
त्रिष्वाश्रमेषु को न्वर्थो भवत्परमभीप्सतः ॥ २७ ॥

राजसाँस्तामसाँश्चैव नित्यं दोषान्विवर्जयेत् ।
सात्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मो को यह सन्देह भया सो इस पर आप विचार करें।
वेदों के अनुसार कहत मम मन का संशय दूर करें" ॥ २१ ॥

जनक कहे

जनक कहे "विज्ञान ज्ञान के विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं।
अरु गुरु के उपदेश विना, विज्ञान, ज्ञान की प्राप्ति नहीं ॥ २२ ॥
ज्ञान नाँव ले, शिष्य हि को गुरुदेव तारत हैं भव पार।
सो उनसे कृतकृत्य बने तब तज, दो साधन वन भव पार ॥ २३ ॥
लोक, कर्म ना नष्ट बने सो धर्म सनातन रखना है।
किये महाजन तैसो अपने आश्रम कार्य हि करना है ॥ २४ ॥
मोक्ष प्राप्ति होवे है, अस ही कर्मयोग को कर करके।
वहुत जन्म के कर्म शुभाशुभ किये भय सब तज करके ॥ २५ ॥
वहुत जन्म ले लेत जीव चित यदि शुद्ध हि बन जाता है।
तो फिर पहले आश्रम में ही मुक्ति योग्य वन जाता है ॥ २६ ॥
चित्त शुद्ध यदि बना उसी का पहले आश्रम में ही जब।
कौन प्रयोजन उसे घूमना दुज भी आश्रम में ही तब ॥ २७ ॥
राजस, तामस, दोनों तज कर, सात्विक पथ से चलना है।
आप हि अपने दोषों को लख, अपनी उन्नति करना है ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्नोपलिप्येत जले वारिचरो यथा ॥ २९ ॥

पक्षिवत्प्रवणादूर्ध्वममुत्रानन्त्यमश्नुते ।
विहाय देहान्निर्मुक्तो निर्द्वन्द्वः प्रशमं गतः ॥ ३० ॥

अत्र गाथाः पुरा गीताः श्रुणु राज्ञा ययातिना ।
धार्यन्ते या द्विजैस्तात मोक्षशास्त्रविशारदैः ॥ ३१ ॥

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वजन्तुषु तत्समम् ।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥ ३२ ॥

न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः ।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३३ ॥

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३४ ॥

संयोज्य मनसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहनीम् ।
त्यक्त्वा कामं च मोहं च तदा ब्रह्मत्वमश्नुते ॥ ३५ ॥

यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाप्ययम् ।
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब भूतों में आत्मा को अरु आत्मा में सब भूत लखे ।
हंसादिक जल मों तस भव में निज को नित निर्लिप्त रखे ॥ २९ ॥

पशु सम ना चलते पंछी जस गिरि पर झट उड़ जाते हैं ।
तस विदेह मुक्ती से जन निर्द्वन्द्व बनत तर जाते हैं ॥ ३० ॥

सुनियो गाथा यही पुरानी ययाति नृप ही कहते जो ।
मोक्षशास्त्र जाने सो सब ही ब्राह्मण धारण करते जो ॥ ३१ ॥

आत्मज्योति तो निज हिय में ही, जो सब में सम होवत है ।
स्वयं वही उस को देखेगा जिस का चित स्थिर होवत है ॥ ३२ ॥

जिससे दूजे नहीं डरे अरु इतरोंसे जो नहि डरता ।
इच्छा, द्वेष तजा सो नर ही, ब्रह्म भाव को पा तरता ॥ ३३ ॥

सब प्राणी के बारे में मन कर्म वचन से जो मानव ।
नहीं पाप की इच्छा रखता, ब्रह्म पात है वो मानव ॥ ३४ ॥

तजत मोहिनी ईर्षा मन से आत्मा को जो ध्यावत है ।
काम, मोह सब तजता सो ही, ब्रह्म भाव को पावत है ॥ ३५ ॥

विषय देखने अरु सुनने में भाव समान हि सब में जब ।
तथा द्वन्द्व सब सहन करे तो, ब्रह्म भाव है उसको तब ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेनैव पश्यति ।
काञ्चनं चायसं चैव सुखं दुःखं तथैव च ॥ ३७ ॥

शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम् ।
जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३८ ॥

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः ।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा ॥ ३९ ॥

तमःपरिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते ।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम् ॥ ४० ॥

एतत्सर्वं च पश्यामि त्वयि बुद्धिमतां वर ।
यच्चान्यदपि वेत्तव्यं तत्त्वतो वेद तद्भवान् ॥ ४१ ॥

ब्रह्मर्षे विदितश्चासि विषयान्तमुपागतः ।
गुरोस्तव प्रसादेन तव चैवोपशिक्षया ॥ ४२ ॥

तस्यैव च प्रसादेन प्रादुर्भूतं महामुने ।
ज्ञानं दिव्यं ममापीदं तेनासि विदितो मम ॥ ४३ ॥

अधिकं तव विज्ञानमधिका च गतिस्तव ।
अधिकं तव चैश्वर्यं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम माने, जब स्तुति, निन्दा ; अरु सुवर्ण लोहा दोनों भी।
सम माने जब जीव, दुःख, सुख ; अरु अप्रिय, प्रिय दोनों भी ॥३७॥

तस हि अर्थ, अरु अनर्थ भी, अरु सर्दी, गर्मी, सम जिसको ।
जीना, मरना, भी सम देखे, ब्रह्म भाव है तब उसको ॥ ३८ ॥

कछुवे का जस, अङ्ग पसारत, फिर से समेट लेना है।
तस ही संन्यासी को, मन से, इन्द्रिय संयम करना है ॥ ३९ ॥

अन्धकार से छिपा भया घर, दीखे, जैसो, दीपक से ।
ग्यानी, तस, आत्मा को देखे, ग्यान रूप ही दीपक से ॥ ४० ॥

बुद्धिमान शुकदेव ! भाव यह सब, मैं, तुम में, देख रहा ।
जानो तुम वह ग्यान भी, जो मम कहने से अब बचा रहा ॥ ४१ ॥

पितु समीप तुम शिक्षा पाये, कृपा उन्हीं की है तब ही ।
विषय-वासना तुम सब त्यागे, जानत हूँ मैं यह सब ही ॥ ४२ ॥

भयी कृपा, उनकी, मुझ पर, सो, दिव्य ग्यान यह पाया हूँ ।
उस ही से, मैं, सभी तुम्हारे तत्त्वों को, लख पाया हूँ ॥ ४३ ॥

तुम्हें, परम ऐश्वर्य, श्रेष्ठ गति, मुझसे बढकर प्राप्त रहे ।
तस ही है विज्ञान बढा, पर उसको तुम नहि समझ रहे ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाल्याद्वा संशयाद्वाऽपि भयाद्वाऽप्यविमोक्षजात् ।
उत्पन्ने चापि विज्ञाने नाधिगच्छति तां गतिम् ॥ ४५ ॥

व्यवसायेन शुद्धेन मद्विधैश्छिन्नसंशयः ।
विमुच्य हृदयग्रन्थीनासादयति तां गतिम् ॥ ४६ ॥

भवाँश्चोत्पन्नविज्ञानः स्थिरबुद्धिरलोलुपः ।
व्यवसायादृते ब्रह्मन्नासादयति तत्परम् ॥ ४७ ॥

नास्ति ते सुखदुःखेषु विशेषो, नासि लोलुपः ।
नौत्सुक्यं नृत्यगीतेषु न राग उपजायते ॥ ४८ ॥

न बन्धुष्वनुबन्धस्ते न भयेष्वस्ति ते भयम् ।
पश्यामि त्वां महाभाग तुल्यलोष्टाश्मकाञ्चनम् ॥ ४९ ॥

अहं त्वामनुपश्यामि ये चाप्यन्ये मनीषिणः ।
आस्थितं परमं मार्गमक्षयं तमनामयम् ॥ ५० ॥

यत् फलं ब्राह्मणस्येह मोक्षार्थश्च यदात्मकः ।
तस्मिन् वै वर्तसे ब्रह्मन् किमन्यत् परिपृच्छसि ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३२६] समाप्तः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो विज्ञानी, पर, गति, उसकी बालक सो नहि जान रहे।
संशय, या अविमोक्षजनित भय, कारण तुम नहि जान रहे॥ ४५॥

मोर वचन सुन, निसन्देह, व्यवहार शुद्ध तुम रख करके।
परम गति को पावोगे झट, हिय की गाँठ छुड़ा करके॥ ४६॥

हो विज्ञानी स्थिर बुद्धि के, विषय वासना नहीं तुम्हें।
पर व्यवसाय किये विन नहि उस परम पद हि का लाभ तुम्हें॥४७॥

विषयों में तव बुद्धि अलोलुप सुख दुःख दोनों सम तुमको।
नृत्य गीत के नहि उत्सुक, अनुराग भी उनका नहि तुमको॥ ४८॥

वान्धव का अनुबन्ध तुम्हें नहि, भय से भी तुम निडर रहे।
देख रहा हूँ तुम मिट्टी सोना पत्थर सब सम मान रहे॥ ४९॥

देखूँ मैं, अरु सभी मनीषी जन भी तुमको देखत हैं।
परम अनामय अक्षय पथ में, चढकर आप विराजत हैं॥ ५०॥

ब्राह्मण का जो रहे प्रयोजन, तथा मोक्ष जस होवे सब।
उस ही में हो स्थित नित; सो तव प्रश्न और क्या होवे अब॥५१॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्म पर्व का ३२६वाँ अध्याय समाप्त॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय ३२७

भीष्म उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं कृतात्मा कृतनिश्चयः ।
आत्मनाऽऽत्मानमास्थाय दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ॥ १ ॥

कृतकार्यः सुखी शान्तस्तूष्णीं प्रायादुदङ्मुखः ।
शैशिरं गिरिमुद्दिश्य सधर्मा मातरिश्वनः ॥ २ ॥

* * * * *

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः ।
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान्महामतिः ॥ २६ ॥

सुमन्तुं च महाभागं वैशम्पायनमेव च ।
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥ २७ ॥

यत्र शिष्यैः परिवृतो व्यास आस्ते महातपाः ।
तत्राश्रमपदं रम्यं ददर्श पितुरुत्तमम् ॥ २८ ॥

आरणेयो विशुद्धात्मा नभसीव दिवाकरः ।
अथ व्यासः परिक्षिप्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय ३२७

भीष्म कहे

भीष्म कहे "शुक वचन सुनत अस, आत्मनिश्चयी बनते हैं ।
निज को आप हि, अवलम्बन कर, निज को आप हि लखते हैं ॥ १ ॥

सुखी, शान्त, मौनी, वन वे कृतकृत्य निजी को मानत हैं ।
उत्तर को हिमगिरि पर जाने, वायू सम वे निकरत हैं ॥ २ ॥

*   *   *   *   *

महातपस्वी व्यास, पराशर-सुत, उस गिरि पर रहते थे ।
शान्त जगह, शिष्यों को गिरि के तट पर वेद पढ़ाते थे ॥ २६ ॥

सुमन्तु तस ही, महाभाग वैशम्पायन है, शिष्य तहाँ ।
महातपस्वी पैल, तथा हैं महाप्राज्ञ जैमिनि भी, तहाँ ॥ २७ ॥

इन शिष्यों से घिरे, व्यासप्रभु, महातपस्वी, जहाँ रहे ।
अस पितु के आश्रम को, शुकजी, रवि सम नभ से देख रहे ॥२८॥

अरणी से उपजे शुद्धात्मा, रवि सम जो, शुक आय रहे ।
उन्हें व्यास तेजस्वी उज्ज्वल अग्नि, रवि सम, देख रहे ॥ २९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ददृशे सुतमायान्तं दिवाकरसमप्रभम् ।

असज्जमानं वृक्षेषु शैलेषु विषयेषु च ।

योगयुक्तं महात्मानं तथा बाणं गुणच्युतम् ॥ ३० ॥

सोऽभिगम्य पितुः पादावगृह्णादरणीसुतः ।
यथोपजोषं तैश्चापि समागच्छन्महामुनिः ॥ ३१ ॥

ततो निवेदयामास पित्रे सर्वमशेषतः ।
शुको जनकराजेन संवादं प्रीतमानसः ॥ ३२ ॥

एवमध्यापयञ्छिष्यान् व्यासः पुत्रं च वीर्यवान् ।
उवास हिमवत्पृष्ठे पाराशर्यो महामुनिः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३२७] समाप्तः ॥

३२९वाँ अध्याय प्रारम्भ

भीष्म उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये नारदः समुपागमत् ।
शुकं स्वाध्यायनिरतं वेदार्थान् वक्तुमीप्सितान् ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखे व्यास मुनि, सूर्य प्रभा सम, तेजस्वी, सुत आवत है।
वृक्ष तथा गिरि के विषयों में अनासक्त जो होवत है॥
सदा आत्मरत योगयुक्त शुक निज आश्रम को आवत है।
बाण, धनुष के रोंदे से ही छूटा, तस सुत आवत है॥ ३०॥

पितु समीप, शुक आकर, उनको नमन करत, पग पकरत हैं।
पितु के चारों शिष्यों को भी तस हि उचित मिल पावत हैं॥ ३१॥

जनकराज के सङ्ग भयी सो वार्ता, शुकजी कहते हैं।
पितु समीप वे प्रसन्न चित से, पूरी बात बताते हैं॥ ३२॥

वीर्यवान मुनिश्रेष्ठ व्यास वे पुत्र पराशर के जो थे।
शिष्य, तथा सुत को सिखलाते, अस हिमगिरि पर रहते थे॥ ३३॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्मपर्व का ३२७वाँ अध्याय समाप्त ॥

३२९वाँ अध्याय प्रारम्भ

भीष्म कहे

शुकदेव तहां स्वाध्याय निरत, अस, होवे जब।
नभ पथ से वेदार्थ कहने, नारद वड़ ऋषि, आये तब॥ १॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवर्षिं तु शुको दृष्ट्वा नारदं समुपस्थितम् ।
अर्घ्यपूर्वेण विधिना वेदोक्तेनाभ्यपूजयत् ॥ २ ॥

नारदोऽथाब्रवीत् प्रीतो ब्रूहि धर्मभृतां वर ।
केन त्वां श्रेयसा वत्स योजयामीति हृष्टवत् ॥ ३ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा शुकः प्रोवाच भारत ।
अस्मिँल्लोके हितं यत् स्यात् तेन मां योक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

नारद उवाच

तत्त्वं जिज्ञासतां पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
सनत्कुमारो भगवानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥ ६ ॥

निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता ।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम् ॥ ७ ॥

मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति ।
नालं स दुःखमोक्षाय संयोगो दुःखलक्षणम् ॥ ८ ॥

सक्तस्य बुद्धिश्चलति मोहजालविवर्धनी ।
मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र सोऽश्नुते ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव ऋषि नारद आये अस, शुकदेव हि, जब, लखते हैं।
अर्घ्य देत, वेदोक्त विधी से, पूजा उनकी, करते हैं॥ २॥

आनन्दित हो प्रसन्न चित से, नारद बोले तब उनको।
"धर्मात्मा, शुक! कहो, करूँ कस, श्रेययुक्त अब मैं तुमको?"॥३॥

शुकजी, नारद मुनि से कहते, इस जग में, मम हित ही हो।
अस सम्पन्न श्रेय से करते कृपया मुझको वही कहो॥ ४॥

नारद बोले

नारद बोले "आत्मनिष्ठ जिज्ञासु तत्त्व के मुनिगन को।
कहे एकदा सनत्कुमारहि अस हितकारी ही उनको॥ ५॥

विद्या सम नहि नेत्र, सत्य सम नहीं तपस्या दुज कोई।
नहीं राग सम दुःख, त्याग सम सौख्य नहीं है, दुज कोई॥ ६॥

सदा पाप से निवृत्त रहना, पुण्यशीलता होवत है।
सदाचार, सद्व्यवहार हि, अति श्रेयस्कर पथ होवत है॥ ७॥

जन्म मनुज का दुःखकर ही, सो मुग्ध बने हैं विषयासक्त।
कभी न छूटे दुःख से, केवल दुःख भोगता विषयासक्त॥ ८॥

विषयासक्त जनों की बुद्धी, मोहजाल से विचलित है।
मोहजाल में फँसा भया, दुःख, दुहू लोक में भोगत है॥ ९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोपायात् तु कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
कार्यः श्रेयोऽर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ ॥ १० ॥

नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात् ।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥ ११ ॥

आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम् ।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं न सत्याद्विद्यते परम् ॥ १२ ॥

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम ॥ १३ ॥

सर्वारम्भपरित्यागी निराशीर्निष्परिग्रहः ।
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान् स च पण्डितः ॥ १४ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थान् यश्चरत्यात्मवशैरिह ।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः ॥ १५ ॥

आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च ।
स विमुक्तः परं श्रेयो न चिरेणाधितिष्ठति ॥ १६ ॥

अदर्शनमसंस्पर्शस्तथाऽसम्भाषणं सदा ।
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विन्दते परम् ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर प्रयत्न से कल्याणेच्छू, काम, क्रोध का शमन करें।
काम, क्रोध, नित उद्यत बन कर, कल्याण हि को नष्ट करें॥ १०॥

करें, क्रोध से तप की रक्षा; श्री की रक्षा मत्सर से।
विद्या की मानावमान से, तथा आत्म की प्रमाद से॥ ११॥

अनृशंसता, परम धर्म है; बढिया बल तो क्षमा रहे।
आत्म ग्यान ही परम ग्यान है; सत से बढकर कछु न रहे॥१२॥

श्रेयस्कर है सत कहना, अरु सत से भी, जो, हितकारी।
मम मत से तो, वही सत्य है, सबका है जो हितकारी॥ १३॥

नहीं परिग्रह, अरु कार्यों में जिनको आशा, कछु न रहे।
सब विषयों के त्यागी, सो ही, पण्डित, अरु विद्वान रहे॥ १४॥

विपयों को भोगत भी जो निज इन्द्रिय वश में रखते हैं।
अनासक्त जो, निर्विकार, चित शान्त, समाहित, रहते हैं॥ १५॥

सदा आत्मरत, रह जो तनु में अहंभाव नहि रखते हैं।
अल्प समय में वे मुक्त हि बन परम श्रेय को पाते हैं॥ १६॥

सदा स्पर्श, दर्शन, संभाषण, जीवों से जो तजता है।
सो ही आत्मा में रत मानव, परम श्रेय को पाता है॥ १७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ १८ ॥

आकिञ्चन्यं सुसन्तोषो निराशीस्त्वमचापलम् ।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः ॥ १९ ॥

परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः ।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम् ॥ २० ॥

निरामिषा न शोचन्ति त्यजेदामिषमात्मनः ।
परित्यज्यामिषं सौम्य दुःखतापाद्विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥

तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना ॥ २२ ॥

गुणसङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा ।
ब्राह्मणो न चिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम् ॥ २३ ॥

द्वन्द्वारामेषु भूतेषु य एको रमते मुनिः ।
विद्धि प्रज्ञानतृप्तं तं ज्ञानतृप्तो न शोचति ॥ २४ ॥

शुभैर्लभति देवत्वं व्यामिश्रैर्जन्म मानुषम् ।
अशुभैश्चाप्यधो जन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करे किसी की भी ना हिंसा, सब से मैत्री करना है।
दुर्लभ मानव तनु पाकर, ना वैर किसी से करना है ॥ १८ ॥

अचपल, तुष्ट, निराश, अकिञ्चन, वृत्ती जित चित जिन की ही।
परमश्रेय उन आत्मज्ञों को देवे, कहते बड जन ही ॥ १९ ॥

सुनो, तात शुक ! तजो परिग्रह निज इन्द्रिय सब जय करके।
दुहू लोक में वास करो भय शोक रहित स्थल जा करके ॥ २० ॥

भोग तजे सो शोक न करते सो तजना तुम भोगेच्छा।
दुःख ताप से मुक्त बनोगे जब तज दोगे भोगेच्छा ॥ २१ ॥

अजित विषय के जय इच्छुक तो दान्त तपस्या रत ही रहे।
संयत चित के सङ्ग रहित बन सब आसक्ती से मुक्त रहें ॥ २२ ॥

सदा एकचर्यारत ब्राह्मण अनासक्त जो रहता है।
मुक्त गुणों से स्वल्प समय में परम सौख्य वह पाता है ॥ २३ ॥

द्वन्द्वाराम जनों में इकला मौनी रमता प्रज्ञानी।
कभी शोक नहि कर पाता वो तृप्त बना है जो ज्ञानी ॥ २४ ॥

सुरत्व है शुभ कर्म हि से, नर जन्म शुभाशुभ कर्मों से।
अधम जन्म जीव पात हैं अवश्य अशुभ ही कर्मों से ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः ।
संसारे पच्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुध्यसे ॥ २६ ॥

अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ।
अनर्थे चार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थं नावबुध्यसे ॥ २७ ॥

संवेष्टयमानं बहुभिर्मोहात्तन्तुभिरात्मजैः ।
कोषकार इवात्मानं वेष्टयन् नावबुध्यसे ॥ २८ ॥

अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः ।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स परिग्रहात् ॥ २९ ॥

पुत्रदारकुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ ३० ॥

महाजालसमाकृष्टान् स्थले मत्स्यानिवोद्धृतान् ।
स्नेहजालसमाकृष्टान् पश्य जन्तून्सुदुःखितान् ॥ ३१ ॥

कुटुम्बं पुत्रदारांश्च शरीरं संचयाश्चये ।
पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृतम् ॥ ३२ ॥

यदा सर्वान्परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते ।
अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि ॥ ३३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जरा मरण से दुःखी जीव जो इस जग में पीडित ही ।
उसका तुम परिणाम देख क्यों निज उद्धार हि करत नहीं ॥ २६ ॥

अहित विषय में हित अरु अध्रुव वस्तु में ध्रुव देखत ही ।
अनर्थ में अर्थ हि को लखकर क्यों प्रबुद्ध तुम बनत नहीं ॥ २७ ॥

कोषकार जस निजी तंतु से बद्ध निज हि को ना जाने ।
तस तुम भी निज को बांधे सो आप हि निज को ना जाने ॥ २८ ॥

नहीं काज परिग्रह का, परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषी है ।
कोषकार निज परिग्रह से ही बद्ध बने सो दोषी है ॥ २९ ॥

जस कीचड़ में फँसकर वन का हाथी दुःख उठावत है ।
तस नारी, सुत, कुटुम्ब में आसक्त जीव दुःख पावत है ॥ ३० ॥

लखो, जाल से, मत्स्यहि स्थल में लाने पर जस दुखि होवे ।
स्नेह जाल से आकर्षित सब जीवों को तस दुख होवे ॥ ३१ ॥

पूत, नार, तनु, कुटुम्ब, धन, परलोक जाय तब साथ न दे ।
केवल अपने सुकृत, दुष्कृत, कर्म न छोड़त साथ हि दे ॥ ३२ ॥

सभी त्याग कर, इक दिन तुमको जाना है जब विवश बने ।
फिर क्यों तुम निज अनुष्ठान तज अनर्थ में आसक्त बने ॥ ३३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविश्रान्तमनालम्बमपाथेयमदैशिकम् ।
तमःकान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि ॥ ३४ ॥

न हि त्वां प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति ॥ ३५ ॥

विद्या कर्म च शौचं च ज्ञानं च बहुविस्तरम् ।
अर्थार्थमनुसार्यन्ते सिद्धार्थश्च विमुच्यते ॥ ३६ ॥

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ ३७ ॥

रूपकूलां मनःस्रोतां स्पर्शद्वीपां रसावहाम् ।
गन्धपङ्कां शब्दजलां स्वर्गमार्गदुरावहाम् ॥ ३८ ॥
क्षमारित्रां सत्यमयीं धर्मस्थैर्यवटारकाम् ।
त्यागवाताध्वगां शीघ्रां नौतार्यां तां नदीं तरेत् ॥ ३९ ॥

त्यज धर्ममधर्मंच तथा सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज ॥ ४० ॥

त्यज धर्ममसंकल्पादधर्मं चाप्यलिप्सया ।
उभे सत्यानृते बुद्धया बुद्धिं परमनिश्चयात् ॥ ४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्गम, अन्धेरा, परदेशी मार्ग, साथ में कोइ नहीं।
इकले कैसे जावोगे तुम निरालम्ब विश्रान्ति नहीं ॥ ३४ ॥

जब तुम जाने निकलोगे तो सङ्ग न कोई आवेगा।
केवल सुकृत दुष्कृत कर्म हि संङ्ग तुम्हारे आवेगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्मज्ञान, विद्या, शुचि, कर्म न करे अनुसरण प्रयोजन का।
पर वो ही नर मुक्त बना है, जो है सिद्ध प्रयोजन का ॥ ३६ ॥

ग्रामिणजन को अनुराग हि, बन्धनकारी रस्सी रहती है।
काट जाय सत्कर्मी, यह दुष्कर्मी से ना कटती है ॥ ३७ ॥

भव नदि के, रस लहर, शव्द जल, गन्ध काठ तट रूप रहे।
स्पर्श द्वीप; मन स्रोत; लाँघने नौका तो सतमयी रहे ॥ ३८ ॥
क्षमा डांड, अरु धर्म हि रस्सी; त्याग वायु से बहत हि जाय।
अस मल्लाह नाँव को लेकर स्वर्ग हि झट भव नदि तर जाय ॥ ३९ ॥

मिथ्या-सत्य; अधार्मिक-धार्मिक; द्वेष-राग सब तज देना।
जासे, यह सब तजते हो सो, उसको भी फिर तज देना ॥ ४० ॥

रखत अलिप्सा, अधर्म तजना, निःसङ्कल्प से धर्म तजो।
सत, मिथ्या तज बुद्धि से फिर परमार्थ हि से बुद्धि तजो ॥ ४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ४२ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यज ॥ ४३ ॥

इदं विश्वं जगत्सर्वमजगच्चापि यद्भवेद् ।
महाभूतात्मकं सर्वं महद्यत्परमाश्रयात् ॥ ४४ ॥

इन्द्रियाणि च पञ्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः ॥ ४५ ॥

सर्वैरिहेन्द्रियार्थैश्च व्यक्ताव्यक्तैर्हि संहितः ।
चतुर्विंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गणः ॥ ४६ ॥

एतैः सर्वैः समायुक्तः पुमानित्यभिधीयते ।
त्रिवर्गं तु सुःखं दुःखं जीवितं मरणं तथा ॥ ४७ ॥

य इदं वेद तत्त्वेन स वेद प्रभवाप्ययौ ।
पारम्पर्येण बोद्धव्यं ज्ञानानां यच्च किंचन ॥ ४८ ॥

इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत् तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥ ४९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हड्डी माँस रुधिर से लेपित चमड़े से जो बद्ध रहे ।
भरा मूत्र पूरीष से तनु यह जहाँ, तहाँ दुर्गन्ध रहे ॥ ४२ ॥

स्थान रोग का, जरा-शोक का, रजो गुणी जो आतुर है ।
तजो इसे जो अनित्य भूतावास मानवी शरीर है ॥ ४३ ॥

स्थावर जङ्गम का यह सारा विश्व जगत जो होवत है ।
महाभूतमय महत् तत्त्व से भरा भया सब होवत है ॥ ४४ ॥

पञ्चप्राण, पञ्चेन्द्रिय, पांचों भूत त्रिगुणमय जीव यही ।
कहलाता है सत्रह राशी रूपी सो अव्यक्त यही ॥ ४५ ॥

इन्द्रिय के सब विषय तथा अव्यक्त व्यक्त मन बुद्धी भी ।
अहङ्कार को मिलाय के यह तत्त्व बने चौवीस सभी ॥ ४६ ॥

इन चौबीस गुणों से होवे, सो ही पुरुष कहावत है ।
सुख, दुख, जीवन तथा मरण, अरु त्रिवर्ग भी जो होवत है ॥ ४७ ॥

जो यह जाने, सो जाने लय उत्पत्ति कस होवत है ।
परम्परा से जाने सब, जो योग्य जानने होवत हैं ॥ ४८ ॥

इन्द्रिय से उनके विषयों का ज्ञान हिं व्यक्त कहाता है ।
विषय अतीन्द्रिय का ही सो अव्यक्त ज्ञान कहवाता है ॥ ४९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तर्प्यते ।
लोके विततमात्मानं लोकाँश्चात्मनि पश्यति ॥ ५० ॥

परावरदृशः शक्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति ।
पश्यतः सर्वभूतानि सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ५१ ॥

सर्वभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते ।
ज्ञानेन विविधान् क्लेशानतिवृत्तस्य मोहजान् ॥ ५२ ॥

लोके बुद्धिप्रकाशेन लोकमार्गो न रिष्यते ।
अनादिनिधनं जन्तुमात्मनि स्थितमव्ययम् ॥ ५३ ॥

अकर्तारममूर्तं च भगवानाह तीर्थवित् ।
यो जन्तुः स्वकृतैस्तैस्तै कर्मभिर्नित्यदुःखितः ॥ ५४ ॥

स दुःखप्रतिघातार्थं हन्ति जन्तूननेकधा ।
ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यन्नवं बहु ॥ ५५ ॥

तप्यतेऽथ पुनस्तेन भुक्त्वाऽपथ्यमिवातुरः ।
अजस्रमेव मोहान्धो दुःखेषु सुखसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

बध्यते मथ्यते चैव कर्मभिर्मन्थवत्सदा ।
ततो निबद्धः स्वां योनिं कर्मणामुदयादिह ॥ ५७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारावाहिक क्रमसे जीव हि, पञ्चेन्द्रिय से, तृप्त रहे।
देखे सब में आत्मा को अरु आत्मा में सब जगत रहे ॥ ५० ॥

सभी अवस्था में वित सब में, आत्मा को देखत है।
ज्ञानमूलमय शक्ति उसकी कभी नष्ट नहि होवत है ॥ ५१ ॥

अशुभ कर्म से, भूतों का संयोग, साध्य नहि होवत है।
मोह क्लेश तज, ग्यान हि से, आचार भ्रष्ट नहि होवत है ॥ ५२ ॥

जीव, अनादि निधन अव्यय ही परमात्मा का आश्रित है।
वही अकर्ता, अमूर्त, भगवन, मुक्ति उपाय जानत है ॥ ५३ ॥

अपने कर्मों से ही, जो जन, दुःख उठाते रहते हैं।
दुःख मिटाने, जीवों की, वो, हिंसा, बहुविध करते हैं ॥ ५४ ॥

नये कार्य आरम्भ दूसरे, बहुविध वे फिर करते हैं।
आतुर जन के अपथ्य भोजन सम, दुख उनसे पाते हैं ॥ ५५ ॥

सदा मोह से अन्धे जन जो दुखकर को सुख मान रहे।
निज कर्मों के मन्थन से, वे, सदा मथित अरु बद्ध रहे ॥ ५६ ॥

फिर भी वे निज कर्म हि से, उपजत, निज योनि से बद्ध रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिभ्रमति संसारं चक्रवद्बहुवेदनः ।
स त्वं निवृत्तबन्धस्तु निवृत्तश्चापि कर्मतः ॥ ५८ ॥

सर्ववित्सर्वजित्सिद्धो भव भावविवर्जितः ।
संयमेन नवं बन्धं निवर्त्य तपसो बलात् ।
सम्प्राप्ता बहवः सिद्धिमप्यबाधां सुखोदयाम् ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ एकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३२९] समाप्तः ॥

३३०वाँ अध्याय प्रारम्भ

नारद उवाच

अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शान्तिकरं शिवम् ।
निशम्य लभते बुद्धिं तां लब्ध्वा सुखमेधते ॥ १ ॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २ ॥
तस्मादनिष्टनाशार्थमितिहासं निबोध मे ।
तिष्ठते चेद्वशे बुद्धिर्लभते शोकनाशनम् ॥ ३ ॥
अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहुत दुखी, वे घूम चक्र सम, प्रपंच में ही बद्ध रहे ॥ ५७ ॥
बन्धन से छूटे हो, तुम, सब कर्म निवृत्त हि, हो करके ।
भाव रहित बन जाओ अब तुम, सब जानत सब जय करके ॥५८॥

नव बन्धन, निजि तपोबलहि से, वहु संयमि जन दूर किये ।
फिर तिससे उपजी सो सुखकर, सिद्धि अबाधित प्राप्त किये ॥ ५९ ॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्मपर्व का ३२९वाँ अध्याय समाप्त ॥

३३०वाँ अध्याय प्रारम्भ

नारद बोले

शास्त्र शान्तिकर, हितकर, जब नर, शोक मिटाने सुनता है ।
तिससे वह फिर ग्यान कमावे, जा से, सौख्य हि पाता है ॥ १ ॥
विषय हजारों, भय, शोक हि के, मूढों को नित घेरत हैं ।
पर जो पण्डित हैं उनके वे निकट कभी ना आवत हैं ॥ २ ॥
सो मुझसे इतिहास सुनो, जो अनिष्ट नाशक होता है ।
निज वश में यदि बुद्धी हो तो, शोक नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥
इष्ट विषय का वियोग जब, अरु अनिष्ट का संयोग बने ।
तभी अल्प बुद्धी के जन का मन दुःख से उद्विग्न बने ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिन्तयेत् ।
न तानाद्रियमाणस्य स्नेहबन्धः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्तते ।
अनिष्टवर्धितं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते ॥ ६ ॥

नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ ७ ॥

गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च ।
सर्वाणिनैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते ॥ ८ ॥

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ९ ॥

नाश्रु कुर्वन्ति ये बुद्ध्या दृष्ट्वा लोकेषु संततिम् ।
सम्यक्प्रपश्यतः सर्वं नाश्रुकर्मोपपद्यते ॥ १० ॥

दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते ।
यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत् ॥ ११ ॥

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं च न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयातीत बने तव, उनके गुण का चिन्तन, करें नहीं ।
उनका आदर करता सो, नर, स्नेह बन्ध से मुक्त नहीं ॥ ५ ॥

विषयों में अनुराग वढे, तव, दोष उसी में लख लेना ।
अनिष्ट बुद्धी देखत नर, झट, विरक्त बन कर, तज देना ॥ ६ ॥

अतीत विषयों से जो दुःखि ; वो, धर्म, अर्थ, यश खोवत है ।
अभाव का चिन्तन तो, व्यर्थ हि, निवृत्ति भी ना देवत है ॥ ७ ॥

भूत, गुणों से युक्त बने, तस वियुक्त भी बन जाते हैं ।
एक हि नर के शोकास्पद, सब विषय, नहीं बन पाते हैं ॥ ८ ॥

मृत या अतीत जन के कारण, जो नर शोक हि करते हैं ।
दुःख से दुःख हि लाभ करत वे, दो अनर्थ में फँसते हैं ॥ ९ ॥

लोकों का विस्तार देखकर, ग्यानी आंसू नहीं बहाय ।
किसी विषय में सम्यक्दर्शी जन, तो, आंसू नहीं बहाय ॥ १० ॥

तन, या मन का दुःख आने पर प्रयत्न यदि ना बन पावे ।
तो उसका ही चिन्तन करते मानव दुःखि ना बन जावे ॥ ११ ॥

दुःख चिन्तन ना करना ही, दुःखनाशक औषधि होवत है ।
दुःख चिन्तन से दुःख न मिटते, दुःख वृद्धि ही होवत है ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ १३ ॥

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥ १४ ॥

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति ।
अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम् ॥ १५ ॥

सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः ।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ॥ १६ ॥

परित्यजति यो दुःखं सुखं वाप्युभयं नरः ।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न तं शोचन्ति पण्डिताः ॥ १७ ॥

त्यज्यन्ते दुःखमर्था हि पालने न च ते सुखाः ।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत् ॥ १८ ॥

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ।
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं सन्तोषं यान्ति पण्डिताः ॥ १९ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन दुःख, बुद्धि से ; अरु तनु दुःख औषधि से ही दूर करे ।
है यह वैज्ञानिक शक्ति, सो, बालक सम, ना शोक करे ॥ १३ ॥

रूप, स्वास्थ्य, धन, यौवन, जीवन, प्रिय सहवास, अनित्य रहे ।
सो इनको ना चाहें पण्डित, यही सत्य पाण्डित्य रहे ॥ १४ ॥

साधारण जन के दुख कारण, एक बार भी, करे न शोक ।
उपाय दीखे तो चेष्टा कर, दूर करें दुख ; करे न शोक ॥ १५ ।

इस जीवन में, सुख तो कम, पर दुःख हि निश्चित बढकर है ।
इन्द्रिय विषयों में मोहित, रुचि, मरण समान हि, दुखकर है ॥१६॥

ब्रह्म भाव, वो पावेगा जो, सुख दुख, दोनों त्याग करे ।
ब्रह्म भाव ही शाश्वत सुख, सो, पण्डित ना कभी शोक करे ॥ १७ ॥

अर्थ कमाना, रखना, त्यजना, तीनों भी हैं दुखकारी ।
करे न चिन्ता अर्थ नाश की ; चिन्ता तो है दुखकारी ॥ १८ ॥

साधारण जन प्राप्ति पर, तृप्त नहीं, सो नहि सन्तोष ।
पण्डित जन तो सदा तृप्त हैं ; सो वे पावत हैं सन्तोष ॥ १९ ॥

अन्त सभी विषयों का होवै, उन्नति से ही पतन रहे ।
संयोग हि से वियोग है, अरु उत्पत्ती से मरण रहे ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।
तस्मात्सन्तोषमेवेह धनं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ २१ ॥

निमेषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति ।
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत् ॥ २२ ॥

भूतेषु भावं सञ्चिन्त्य ये बुद्ध्वा मनसः परम् ।
न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्तः परमां गतिम् ॥ २३ ॥

सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
व्याघ्रः पशुमिवासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ २४ ॥

तथाप्युपायं सम्पश्येद् दुःखस्य परिमोक्षणम् ।
अशोचन्नारभेच्चैव मुक्तश्चाव्यसनी भवेत् ॥ २५ ॥

शब्दे स्पर्शे च रूपे च गन्धेषु च रसेषु च ।
नोपभोगात्परं किंचिद्धनिनो वाऽधनस्य च ॥ २६ ॥

प्राक्सम्प्रयोगाद्भूतानां नास्ति दुःखं परायणम् ।
विप्रयोगात्तु सर्वस्य न शोचेत्प्रकृतिस्थितः ॥ २७ ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त पिपासा का नहि है, सो परम सौख्य तो है सन्तोष ।
या से पण्डित जन समझे हैं, उत्तम धन तो है सन्तोष ॥ २१ ॥

काल, अवस्था बदले सो, इक निमेष भी नहि ठहरत है ।
निज तनु ही जब अनित्य, तब क्या विषयेच्छा, जो अनित्य है ॥२२॥

जनकी सत्ता देखत ग्यानी सत पथ के जो होवत है ।
नष्ट वस्तु का शोक न करते, परम गती ही देखत हैं ॥ २३ ॥

कामी नर अतृप्त, विषय बेच सञ्चय में जब लग जावे ।
उसे मृत्यु तब अस हरता, जस बाघ हरिन को ले जावे ॥ २४ ॥

दुःख दूर हो, अस उपाय ही सोचत, करना युक्ती से ।
शोक रहित सब कार्य; दुःख तो मिटता केवल मुक्ती से ॥ २५ ॥

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध में केवल भोग हि दीखत हैं ।
निर्धन या धनिकों को केवल भोग सौख्य यह देखत हैं ॥ २६ ॥

जस प्राणिन के बारे में संयोग पूर्व कछु रहे न दुःख ।
तस प्रकृति के ज्ञाते जन भी वियोग का कछु करे न दुःख ॥ २७ ॥

राखें शिश्नोदर धीरज से, हाथ पाँव को नयन हि से ।
नेत्र कान को मन ही से, मन, वाणी को निज विद्या से ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रणयं प्रतिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च ।
विचरेदसमुन्नद्धः स सुखी स च पण्डितः ॥ २९ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत्स सुखी भवेत् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिपतने त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३३०] समाप्तः ॥

अध्याय ३३१वाँ प्रारम्भ

नारद उवाच

सुखदुःखविपर्यासो यदा समनुपद्यते ।
नैनं प्रज्ञा सुनीतं वा त्रायते नापि पौरुषम् ॥ १ ॥

स्वभावाद्यत्नमातिष्ठेद्यत्नवान्नावसीदति ।
जरामरणरोगेभ्यः प्रियमात्मानमुद्धरेत् ॥ २ ॥

रुजन्ति हि शरीराणि रोगाः शारीरमानसाः ।
सायका इव तीक्ष्णाग्राः प्रयुक्ता दृढधन्विभिः ॥ ३ ॥

व्यथितस्य विधित्साभिस्ताम्यतो जीवितैषिणः ।
अवशस्य विनाशाय शरीरमपकृष्यते ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिचित या ना परिचित जन में प्रणय तजत जो विचरत है।
अस उद्धत ना होता सो नर, पण्डित ही, सुखि होवत है॥ २९॥

निर्लोभी, निरपेक्ष, आत्मरत हो कर, जो नर बैठत है।
तथा सहायक, आत्मा, समझत विचरे, सो, सुखि होवत है॥ ३०॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्म पर्व का ३३०वाँ अध्याय समाप्त॥

अध्याय ३३१वाँ प्रारम्भ

नारद बोले

नारद बोले "सुख, दुख को जब मानव उलटा समझत है।
तब प्रज्ञा या पौरुष से वह रक्षित कभी न होवत है॥ १॥

यत्न करे तो यश प्राप्ति; सो स्वभाव के सा यत्न करे।
जरा, मरण अरु रोगों से, निज प्रिय तनु का उद्धार करे॥ २॥

तीक्ष्ण बाण, दृढ धनुर्धरों के, तनु को जैसे रुग्ण करें।
रोग मानसिक, अरु शारीरिक, तनु को तस ही रुग्ण करें॥ ३॥

व्यथित प्यास से, क्लेशयुक्त अरु जीने की इच्छा रखता है।
देह अवश अस, विनाश कारण, मानव का, कृश बनता है॥ ४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव ।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहानि पुनः पुनः ॥ ५ ॥

व्यत्ययो ह्ययमत्यन्तं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
जातान्मर्त्याञ्जरयति निमेषान्नावतिष्ठते ॥ ६ ॥

सुखदुःखानि भूतानामजरो जरयत्यसौ ।
आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनः पुनरुदेति च ॥ ७ ॥

अदृष्टपूर्वानादाय भावानपरिशङ्कितान् ।
इष्टानिष्टान् मनुष्याणामस्तं गच्छन्ति रात्रयः ॥ ८ ॥

योऽयमिच्छेद्यथाकामं कामानां तदवाप्नुयात् ।
यदि स्यान्न पराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम् ॥ ९ ॥

संयताश्च हि दक्षाश्च मतिमन्तश्च मानवाः ।
दृश्यन्ते निष्फलाः सन्तः प्रहीणाः सर्वकर्मभिः ॥ १० ॥

अपरे बालिशाः सन्तो निर्गुणा पुरुषाधमाः ।
आशीर्भिरप्यसंयुक्ता दृश्यन्ते सर्वकामिनः ॥ ११ ॥

भूतानामपरः कश्चिद्धिंसायां सततोत्थितः ।
वञ्चनायां च लोकस्य स सुखेष्वेव जीर्यते ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहे सदा, जस, स्रोत नदी के, कभी न रुकते करे गमन ।
तस ही दिव अरु रात, जनों की आयू हरते करे गमन ॥ ५ ॥

शुक्ल, कृष्ण, दो पक्ष, प्रबल अति, बनकर बीतत जाते हैं ।
जराग्रस्त जीवों को करते ; निमेष भी नहि रुकते हैं ॥ ६ ॥

अजर सूर्य यह बार बार जो अस्त होत, फिर उगता है ।
वही, प्राणियों के सुख दुख को, सदा जीर्ण कर देता है ॥ ७ ॥

इष्टानिष्ट भाव मानव के, अदृष्ट के जो होवत हैं ।
उन्हें सफल या असफल करते रात हि बीतत जावत हैं ॥ ८ ॥

पराधीन, यदि कर्म न हो तो, जो इच्छा जन कर लेते ।
मनोकामनानुसार, उसकी पूर्ती, वे जन, कर लेते ॥ ९ ॥

कोई कोई चतुर, दक्ष, अरु संयमशील भी रहते हैं ।
फिर भी अपने धर्म, तथा कर्मों में निष्फल दिखते हैं ॥ १० ॥

कई दूसरे, अधम, निर्गुणी, मूरख, आशायुक्त रहे ।
फिर भी, वे, सब काम्य वस्तु के भोग भोगते, दीख रहे ॥ ११ ॥

सदा जीव हिंसा में ही, जन, कोई कोई उद्यत है ।
लोगों को ठगता है फिर भी सुख से समय बितावत है ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अचेष्टमानमासीनं श्रीः कञ्चिदुपतिष्ठते ।
कश्चित्कर्मानुसृत्यान्यो न प्राप्यमधिगच्छति ॥ १३ ॥

अपराधं समाचक्ष्व पुरुषस्य स्वभावतः ।
शुक्रमन्यत्र सम्भूतं पुनरन्यत्र गच्छति ॥ १४ ॥

तस्य योनौ प्रयुक्तस्य गर्भो भवति वा न वा ।
आम्रपुष्पोपमा यस्य निर्वृत्तिरुपलभ्यते ॥ १५ ॥

केषाञ्चित्पुत्रकामानामनुसन्तानमिच्छताम् ।
सिद्धौ प्रयतमानानां न चाण्डमुपजायते ॥ १६ ॥

गर्भाच्चोद्विजमानानां क्रुद्धादाशीविषादिव ।
आयुष्माञ्जायते पुत्रः कथं प्रेत इवाभवत् ॥ १७ ॥

देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रगृद्धिभिः ।
दश मासान् परिधृता जायन्ते कुलपांसनाः ॥ १८ ॥

अपरे धनधान्यानि भोगाँश्च पितृसञ्चितान् ।
विपुलानभिजायन्ते लब्धास्तैरेव मङ्गलैः ॥ १९ ॥

अन्योन्यं समभिप्रेत्य मैथुनस्य समागमे ।
उपद्रव इवाविष्टो योनिं गर्भः प्रपद्यते ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिन चेष्टा के बैठा कोई, फिर भी लछमी झट आ जाय ।
तथा कोइ नर, निज कर्मों के योग्य अर्थ को भी ना पाय ॥ १३ ॥

देखो, जन के स्वभाव के अनुसार, दोष, जो होवत है ।
कहिं उपजत है वीर्य, तथा अन्यत्र कहीं, फिर, जावत है ॥ १४ ॥

वही शुक्र, योनी में गिरते, गर्भ बने, या नहीं बने ।
आम्र पुष्प सम जानों वह, कभि आम बने या नहीं बने ॥ १५ ॥

पुत्र चाहता कोई जन, रह सावध, यत्न भी करता है ।
फिर भी अभागा, एक भी वो, सन्तान लाभ नहीं करता है ॥ १६ ॥

बिषधर सर्प हि, गर्भ, समझ कर, व्याकुल कइ होय रहे ।
फिर भी लम्बे आयु की वह, पुत्रोत्पत्ती पाय रहे ॥ १७ ॥

सुत इच्छा से कइ सुर पूजत, तप से, दीन हि बन जावे ।
बिताय दस महिने तब सुत, पर कुलाङ्गार वह बन जावे ॥ १८ ॥

कई पूत भी, अस उपजे, जो भाग्यवान बड रहते हैं ।
पितु सञ्चित बहु धान्य धनादिक भोगत, सुख से बढते हैं ॥ १९ ॥

नर नारी संयोग बनत, जब, गर्भ धारणा होवत है ।
तहां, गर्भ में जीव घुसे तब, बड़ा उपद्रव, मानत है ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शीघ्रं परशरीराणि च्छिन्नबीजं शरीरिणम् ।
प्राणिनं प्राणसंरोधे मांसश्लेष्मविवेष्टितम् ॥ २१ ॥

निर्दग्धं परदेहेऽपि परदेहं चलाचलम् ।
विनश्यन्तं विनाशान्ते नावि नावमिवाहितम् ॥ २२ ॥

सङ्गत्या जठरे न्यस्तं रेतोबिन्दुमचेतनम् ।
केन यत्नेन जीवन्तं गर्भं त्वमिह पश्यसि ॥ २३ ॥

अन्नपानानि जीर्यन्ते यत्र भक्षाश्च भक्षिताः ।
तस्मिन्नेवोदरे गर्भः किं नान्नमिव जीर्यते ॥ २४ ॥

गर्भे मूत्रपुरीषाणां स्वभावनियता गतिः ।
धारणे वा विसर्गे वा न कर्ता विद्यते वशः ॥ २५ ॥

स्रवन्ति ह्युदराद्गर्भा जायमानास्तथा परे ।
आगमेन तथान्येषां विनाश उपपद्यते ॥ २६ ॥

एतस्माद्योनिसम्बन्धाद्यो जीवन् परिमुच्यते ।
प्रजां च लभते काश्चित्पुनर्द्वन्द्वेषु सज्जति ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण शेष होते नव तनु में, जीव, बीज सम जावत है।
मरते झट है देहान्तर, सो, देहबन्ध नहीं छूटत है॥ २१॥

नाँव डूबती लख, जस नौका, दूजी सहायक होवत है।
देह नाश, लख, जीव कर्मफल, झट, तस, नव तनु देवत है॥२२॥

रेत-बिंदु दो प्रथम अचेतन, मिले, जठर जब पड़े रहे।
यत्न कोनसा भया? जिन्हें, तुम, जीवित गर्भ हि, देख रहें?॥२३॥

खाना, पीना, जात जठर मों, पचत जीर्ण जस होवत है।
क्यों नहिं तस ही पड़ा जठर मों, गर्भ, जीर्ण ना होवत है?॥२४॥

स्वाभाविक, मल, मूत्रादिक सम, गर्भ रुका सो दीखत है।
गर्भ, छोड़ने, या रखने में, कर्ता कोई न दीखत है॥ २५॥

बहुत समय पर, अकाल ही, जो गर्भ, पेट से गिर जावे।
बहुतों की तब मृत्यू, ऐसी, गर्भस्राव से दिख जावे॥ २६॥

इस प्रकार जो, नार योनि में, शुक्र बीज को बोते हैं।
द्वन्द्व योग से संयुक्त हि वे, कन्या या सुत पाते हैं॥ २७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स तस्य सहजातस्य सप्तमीं नवमीं दशाम् ।
प्राप्नुवन्ति ततः पञ्च न भवन्ति गतायुषः ॥ २८ ॥

नाभ्युत्थाने मनुष्याणां योगाः स्युर्नात्र संशयः ।
व्याधिभिश्च विमथ्यन्ते व्याधैः क्षुद्रमृगा इव ॥ २९ ॥

व्याधिभिर्मथ्यमानानां त्यजतां विपुलं धनम् ।
वेदनां नापकर्षन्ति यतमानाश्चिकित्सकाः ॥ ३० ॥

ते चातिनिपुणा वैद्याः कुशलाः सम्भृतौषधाः ।
व्याधिभिः परिकृष्यन्ते मृगा व्याधैरिवार्दिताः ॥ ३१ ॥

ते पिबन्तः कषायाँश्च सर्पींषि विविधानि च ।
दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा नागैरिवोत्तमैः ॥ ३२ ॥

के वा भुवि चिकित्सन्ते रोगार्तान्मृगपक्षिणः ।
श्वापदानि दरिद्राँश्च प्रायो नार्ता भवन्ति ते ॥ ३३ ॥

घोरानपि दुराधर्षान्नृपतीनुग्रतेजसः ।
आक्रम्याददते रोगाः पशून्पशुगणा इव ॥ ३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गर्भ, जन्म, शिशु, कुमारता, पौगण्ड, युवा स्थविरावस्था ।
जरा, प्राप्त, संरोध, रहत हैं प्राणिन के हि दशावस्था ॥
इनमें सप्तम अरु नौवा तो पञ्च भूत के भोगत है ।
अन्तर्यामी आत्मा तो निर्लिप्त कछू ना भोगत है ॥ २८ ॥

मनुज अभ्युदय विषयों में कछु उपाय तो, ना दीखत है ।
क्षुद्र हिरन सम, विवश सदा वह, व्याधी पीडित दीखत है ॥ २९ ॥

रोग व्याधि से पीडित मानव, बहुत बहुत धन त्यागत हैं ।
वैद्य प्रयत्नी फिर भी उनको मन का दुख नहि रोकत हैं ॥ ३० ॥

वैद्य कुशल, अरु निपुण, औषधी-संञ्चय भी, जो रखते हैं ।
वे भी, पीडित मृग सम, रोगी बनकर, मृत ही, दिखते हैं ॥ ३१ ॥

कषाय रस, अरु विविध घृतादिक, यद्यपि, वे जन, लेवत हैं ।
फिर भी, गज से टूटे तरु सम, जरा जीर्ण ही दीखत हैं ॥ ३२ ॥

आर्त, रोग से, भू पर हैं, मृग, पक्षी, श्वापद, दरिद्रजन ।
कौन चिकित्सा इनकी करता ? सो यह पीडा करें सहन ॥ ३३ ॥

प्रबल पशू जस, निर्बल पशु को, करत आक्रमण, मारत हैं ।
तस ही रोग, बड नृप जन को भी, करत आक्रमण, मारत हैं ॥३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति लोकमनाक्रन्दं मोहशोकपरिप्लुतम् ।
स्रोतसा सहसा क्षिप्तं ह्रियमाणं बलीयसा ॥ ३५ ॥

न धनेन न राज्येन नोग्रेण तपसा तथा ।
स्वभावमतिवर्तन्ते ये नियुक्ताः शरीरिणः ॥ ३६ ॥

न म्रियेरन्न जीर्येरन्सर्वे स्युः सर्वकामिनः ।
नाप्रियं प्रतिपश्येयुरुत्थानस्य फले सति ॥ ३७ ॥

उपर्युपरि लोकस्य सर्वो गन्तुं समीहते ।
यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यमदमत्ताँश्च मत्तान् मद्यमदेन च ।
अप्रमत्ताः शठाञ्छूरा विक्रान्ताः पर्युपासते ॥ ३९ ॥

क्लेशाः परिनिवर्तन्ते केषाञ्चिदसमीक्षिताः ।
स्वं स्वं न पुनरन्येषां न किञ्चिदधिगम्यते ॥ ४० ॥

महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंधिषु ।
वहन्ति शिबिकामन्ये यान्त्यन्ये शिबिकागताः ॥ ४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोह शोक से दुखी जनों को, बली काल अस हर लेवे ।
जैसे, धारा में छोड़ी, सो वस्तु धारा हर लेवे ॥ ३५ ॥

बहुत देहधारी करते हैं, यत्न, जीतने स्वभाव को ।
बहुत राज्य, धन, तप से भी, वे जीत न सकते स्वभाव को ॥ ३६ ॥

भाग्योदय पर सब जन अपनी मनोकामना पाते हैं ।
मृत, या जीर्ण न होते, अप्रिय दर्शन भी नहि करते हैं । ३७ ॥

उच्च पद हि पर जाने, शक्त्यनुसार, करते यत्न, सभी ।
पर वह घटना नहि बन पाती, नहीं बनत हैं सकल सभी ॥ ३८ ॥

अप्रमत्त, शठ, शूर, विक्रमी, स्वभाव के, जो रहते हैं ।
मदोन्मत्त धन मद्य हि से अस जन की सेवा करते हैं ॥ ३९ ॥

किसी किसी प्राणी के क्लेश हि, झट से, निवृत्त होते हैं ।
कोई कोई सब क्लेशों का भोग किया ही करते हैं ॥ ४० ॥

दिखे, विषमता बड़ी ; जगत में कर्म फल हि जो भोगत हैं ।
कई पालकी ढोते, अरु कई चढे पालकी जावत हैं ॥ ४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वेषामृद्धिकामानामन्ये रथपुरःसराः ।
मनुष्याश्च गतस्त्रीकाः शतशो विविधाः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

द्वन्द्वारामेषु भूतेषु गच्छन्त्येकैकशो नराः ।
इदमन्यत्पदं पश्य मात्र मोहं करिष्यसि ॥ ४३ ॥

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज ॥ ४४ ॥

एतत्ते परमं गुह्यमाख्यातमृषिसत्तम ।
येन देवाः परित्यज्य मर्त्यलोकं दिवं गताः ॥ ४५ ॥

नारदस्य वचः शुकः श्रुत्वा परमबुद्धिमान् ।
सञ्चिन्त्य मनसा धीरो निश्चयं नाध्यगच्छत ॥ ४६ ॥

पुत्रदारैर्महान्क्लेशो विद्याम्नाये महाञ्छ्रमः ।
किं नु स्याच्छाश्वतं स्थानमल्पक्लेशं महोदयम् ॥ ४७ ॥

ततो मुहूर्तं सञ्चिन्त्य निश्चितां गतिमात्मनः ।
परावरज्ञो धर्मस्य परां नैःश्रेयसीं गतिम् ॥ ४८ ॥

कथं त्वहमसंश्लिष्टो गच्छेयं गतिमुत्तमाम् ।
नावर्तेयं यथा भूयो योनिसङ्करसागरे ॥ ४९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संपदावानों में भी, रथादि अग्रेसर अस, स्वतंत्र हैं।
विना नारि के कोई, अरु कई, नार सैकड़ों भोगत हैं ॥ ४२ ॥

जीव द्वन्द्व में रमते सो, इक इक ही, जाते, जहां, सभी।
स्वतंत्र है वह स्थान, लखो यह, पर मोहित ना बनो कभी ॥ ४३ ॥

सत-मिथ्या अरु अधर्म-धार्मिक, राग-द्वेष, सब तज देना।
जिससे, यह सब तजते हो सो, उसको भी, तुम तज देना ॥ ४४ ॥

मृत्युलोक तज, गये स्वर्ग में सुरगण जिसके आश्रय से।
वही विषय जो परम गुह्य सो कहा मुनीश्वर ! मैं तुमसे ॥ ४५ ॥

बुद्धिमान, शुकदेव धीर, अस, नारद वचन हि सुनो हैं।
उसका अनुशीलन करके, कछु निश्चय लाभ, न करते हैं ॥ ४६ ॥

सोचे वे, "सुत, नार, क्लेश के, विद्या में भी श्रम ही है।
सुलभ साध्य सो, नित्य स्थान अरु कौन, जहां बड़ उन्नति है" ॥४७॥

इक मुहूर्त तक धार्मिक शुकजी उपाय को तब सोच रहे।
परम गति बड़ श्रेयस्कर के, निर्णय पर अस पहुँच रहे ॥ ४८ ॥

"सब उपाधि से छूटत मैं, कस परम धाम मैं जाऊँगा ?
योनि-सङ्कर-सागर में, फिर, जासे, ना गिर जाऊँगा ॥ ४९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परं भावं हि काङ्क्षामि यत्र नावर्तते पुनः ।
सर्वसङ्गान्परित्यज्य निश्चितो मनसा गतिम् ॥ ५० ॥

तत्र यास्यामि यत्रात्मा शमं मेऽधिगमिष्यति ।
अक्षयश्चाव्ययश्चैव यत्र स्थास्यामि शाश्वतः ॥ ५१ ॥

न तु योगमृते शक्या प्राप्तुं सा परमा गतिः ।
अवबन्धो हि बुद्धस्य कर्मभिर्नोपपद्यते ॥ ५२ ॥

तस्माद्योगं समास्थाय त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।
वायुभूतः प्रवेक्ष्यामि तेजोराशिं दिवाकरम् ॥ ५३ ॥

न ह्येष क्षयतां याति सोमः सुरगणैर्यथा ।
कम्पितः पतते भूमिं पुनश्चैवाधिरोहति ॥ ५४ ॥

क्षीयते स सदा सोमः पुनश्चैवाभिपूर्यते ।
नेच्छाम्येवं विदित्वैते ह्रासवृद्धी पुनः पुनः ॥ ५५ ॥

रविस्तु संतापयते लोकान् रश्मिभिरुल्बणैः ।
सर्वतस्तेज आदत्ते नित्यमक्षयमण्डलः ॥ ५६ ॥

अतो मे रोचते गन्तुमादित्यं दीप्ततेजसम् ।
अत्र वत्स्यामि दुर्धर्षो निःशङ्केनान्तरात्मना ॥ ५७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्व सङ्ग को तज करके मैं, मन ही मन, जो सोचत हूँ।
उपाय निश्चय करके, मैं, वह परम भाव ही चाहत हूँ ॥ ५० ॥

वही परम पद, मम आत्मा को, शान्ति लाभ ही रहे जहां।
अक्षय, अव्यय अरु शाश्वत, मैं, भाव हि से रह सकूं, जहां ॥५१॥

उसी स्थान में जावूं मैं, पर, योग विना वह गती नहीं।
बुद्धिमान हो, कर्म करे तो, देह बन्ध का भय भी नहीं ॥ ५२ ॥

सो गृहरूपी देह तजत, मैं, योग मार्ग ही लेता हूँ।
वायु रूप ले, तेजोमय रवि मंडल में ही जाता हूँ ॥ ५३ ॥

नाशवान हैं मेघ, तथा शशि, सुर से, कम्पित होता है।
भू पर गिर, फिर नभ मों जावे, तस तो रवि नहि होता है ॥ ५४ ॥

चन्द्र, क्षीण हो, फिर परिपूरण होता सो, मैं देखत हूँ।
शशि मण्डल का घटना बढना जावत उसे, ना चाहत हूँ ॥ ५५ ॥

सब लोगों को, तीक्ष्ण किरण से, रवि, सन्ताप हि, देता है।
अक्षय मण्डल में नित रहकर, तेज, सभी से लेता है ॥ ५६ ॥

सो ही मम मन चाहे, जाने दीप्ति किरण के रवि मंडल।
तनु तज के, दुर्द्धर्ष, निःशङ्कित, वास करूं मैं रवि मंडल ॥ ५७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यस्य सदने चाहं निक्षिप्येदं कलेवरम् ।
ऋषिभिः सह यास्यामि सौरं तेजोऽतिदुःसहम् ॥ ५८ ॥

आपृच्छामि नगान्नागान् गिरिमुर्वीं दिशो दिवम् ।
देवदानवगन्धर्वान्पिशाचोरगराक्षसान् ॥ ५९ ॥

लोकेषु सर्वभूतानि प्रवेक्ष्यामि न संशयः ।
पश्यन्तु योगवीर्यं मे सर्वेदेवाः सहर्षिभिः ॥ ६० ॥

अथानुज्ञाप्य तमृषिं नारदं लोकविश्रुतम् ।
तस्मादनुज्ञां सम्प्राप्य जगाम पितरं प्रति ॥ ६१ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ।
शुकः प्रदक्षिणं कृत्वा कृष्णमापृष्टवान्मुनिम् ॥ ६२ ॥

श्रुत्वा चर्षिस्तद्वचनं शुकस्य
प्रीतो महात्मा पुनराह चैनम् ।
भो भोःपुत्र स्थीयितां तावदद्य
यावच्चक्षुः प्रीणयामि त्वदर्थे ॥ ६३ ॥

निरपेक्षः शुको भूत्वा निःस्नेहो मुक्तसंशयः ।
मोक्षमेवानुसंचिन्त्य गमनाय मनो दधे ॥ ६४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य स्थान मों, जाकर के मैं, इस शरीर को तज दूँगा ।
ऋषियन सह, अति दुःसह रवि के तेजहि में घुस जाऊँगा ॥ ५८ ॥

अनुमति लूं मैं, नभ, गिरि, उर्वी, दिशा, आग, सुर, सर्पों की ।
पिशाच, राक्षस, दानव, अरु गन्धर्व तथा सब जीवों की ॥ ५९ ॥

रवि मण्डल में, जावूँगा मैं, लेत सहारा योगिक बल ।
सब ऋषि अरु सुरगण भी देखें, कैसा है मम योगिक बल ॥६०॥

अस सोचत, नारदजी से फिर, अनुमति शुकजी मांगत हैं ।
उनकी आज्ञा लेकर फिर, निज पिता निकट, वे, जावत हैं ॥६१॥

पिता व्यासजी के चरणों पर, प्रणाम, शुकजी करते हैं ।
प्रदक्षिणा कर अपने मन की इच्छा उनसे कहते हैं ॥ ६२ ॥

व्यास महात्मा, शुकदेव हि का वचन तहाँ अस सुनते हैं ।
शुकजी पर वे प्रसन्न होकर, उनसे ऐसो कहते हैं ।
"हे प्रेमी ! सुत ! अब मम आगे, ठाडे रहना तब तक ।
तुम्हें देखकर, उभय नयन मम, प्रसन्न होवत हैं, जब तक ॥ ६३ ॥

स्नेह, अपेक्षा, संशय, तीनों तब शुकदेवजी त्यागत है ।
सदा मोक्ष का चिन्तन करते, जाने को ही सोचत है ॥ ६४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितरं सम्परित्यज्य जगाम मुनिसत्तमः ।
कैलासपृष्ठं विपुलं सिद्धसंघनिषेवितम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिगमने एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३३१] समाप्तः ।

अध्याय ३३२वाँ प्रारम्भ

भीष्म उवाच

गिरिशृङ्गं समारुह्य सुतो व्यासस्य भारत ।
समे देशे विविक्ते स निःशलाक उपाविशत् ॥ १ ॥

धारयामास चात्मानं यथाशास्त्रं यथाविधि ।
पादप्रभृतिगात्रेषु क्रमेण क्रमयोगवित् ॥ २ ॥

ततः स प्राङ्मुखो विद्वानादित्ये नचिरोदिते ।
पाणिपादं समादाय विनीतवदुपाविशत् ॥ ३ ॥

न तत्र पक्षिसंघातो न शब्दो नातिदर्शनम् ।
यत्र वैयासकिर्धीमान् योक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

स ददर्श तदात्मानं सर्वसङ्गविनिःसृतम् ।
प्रजहास ततो हासं शुकः सम्प्रेक्ष्य तत्परम् ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर वें मुनिसत्तम शुकजी, निज पितुं को भी त्यागत हैं।
सिद्ध सेव्य कैलास गिरी के ऊपर जाना चाहत हैं ॥ ६५ ॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्मपर्व का ३३१वाँ अध्याय समाप्त ॥

अध्याय ३३२वाँ प्रारम्भ

भीष्म कहे

भीष्म कहे "शुकदेव, व्यास सुत, गिरी शिखर पर जावत हैं।
बिना घास के, निर्जन, समतल, अस भूमि पर बैठत हैं ॥ १ ॥

फिर क्रम योगहि के ग्यानी, शुक, चरणों से ले शिर तक सब।
शास्त्र विधी अनुसार, धारणा, बुद्धि से करते, तब ॥ २ ॥

सूर्योदय होते झट, शुक मुख पूरब की ओर किये।
विनीत होकर बैठ गये हैं, हाथ, पैर, सब स्थिर हि किये ॥ ३ ॥

बुद्धिमान शुक, योग क्रिया, फिर करते हैं प्रारम्भ जहाँ।
पक्षी के संघात, शब्द, या दर्शनीय कछु नहीं तहाँ ॥ ४ ॥

सर्व सङ्ग से मुक्त, आत्म का दर्शन, वे, तब करते हैं।
करत आत्मदर्शन शुकजी अति प्रसन्न होकर हँसते हैं ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये ।
महायोगेश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद्विहायसम् ॥ ६ ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा देवर्षिं नारदं ततः ।
निवेदयामास च तं स्वं योगं परमर्षये ॥ ७ ॥

शुक उवाच

दृष्टो मार्गः प्रवृत्तोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु तपोधन ।
त्वत्प्रसादाद्गमिष्यामि गतिमिष्टां महाद्युते ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच

नारदेनाभ्यनुज्ञातः शुको द्वैपायनात्मजः ।
अभिवाद्य पुनर्योगमास्थायाकाशमाविशत् ॥ ९ ॥

कैलासपृष्ठादुत्पत्य स पपात दिवं तदा ।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्वायुभूतः सुनिश्चितः ॥ १० ॥

तमुद्यन्तं द्विजश्रेष्ठं वैनतेयसमद्युतिम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि मनोमारुतरंहसम् ॥ ११ ॥

व्यवसायेन लोकाँस्त्रीन्सर्वान्सोऽथ विचिन्तयन् ।
आस्थितो दीर्घमध्वानं पावकार्कसमप्रभः ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोक्ष प्राप्ति के कारण, वे, फिर, योग क्रिया को सोचत हैं।
बनत, महायोगेश्वर, नभ में ऊपर जाने चाहत हैं॥ ६॥

सुर ऋषि नारद, तहाँ आय, तव प्रदक्षिणा, शुक करते हैं।
उनसे फिर, निज योगहि का सब विनय निवेदन करते हैं॥ ७॥

शुक कहे

शुक कहते "प्रभु ! देखा मैं, अरु निकला, जाने मुक्ती पथ।
कृपा से, इच्छित पद पर पोहोंचू जाकर मुक्ती पथ" ॥ ८॥

भीष्म कहे

भीष्म कहे "शुक नारदजी की आज्ञा पाकर नमन किये।
योग क्रिया अवलम्बन कर, वे, नभ में, ऊपर, गमन किये॥ ९॥

शुक श्रीमान, बने नभचर तव, वायुभूत ही होवत हैं।
गिरि कैलासहि के ऊपर उठ, नभ उड़कर जावत हैं॥ १०॥

वेग, वायु, अरु मन सम पर, शुक, तेज, गरुड़ सम राखत हैं।
नभो मार्ग से जाते उनको, ऐसो ही, सब देखत हैं॥ ११॥

अग्नि, सूर्य सम, तेज राशि, शुक सर्वात्मा को ध्यावत हैं।
तीन लोक का विचार करते दीर्घ मार्ग से जावत हैं॥ १२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमेकमनसं यान्तमव्यग्रमकुतोभयम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि जङ्गमानि चराणि च ॥ १३ ॥

यथाशक्ति यथान्यायं पूजां वै चक्रिरे तदा ।
पुष्पवर्षैश्च दिव्यैस्तमवचक्रुर्दिवौकसः ॥ १४ ॥

तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ऋषयश्चैव संसिद्धाः परं विस्मयमागताः ॥ १५ ॥

अन्तरिक्षगतः कोऽयं तपसा सिद्धिमागतः ।
अधःकायोर्ध्ववक्त्रश्च नेत्रैः समभिरज्यते ॥ १६ ॥

ततः परमधर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
भास्करं समुदीक्षन्स प्राङ्मुखो वाग्यतोऽगमत् ॥ १७ ॥

शब्देनाकाशमखिलं पूरयन्निव सर्वशः ।
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा सर्वाप्सरोगणाः ॥ १८ ॥

संभ्रान्तमनसो राजन्नासन्परमविस्मिताः ।
पञ्चचूडाप्रभृतयो भृशमुत्फुल्ललोचनाः ॥ १९ ॥

दैवतं कतमं ह्येतदुत्तमां गतिमास्थितम् ।
सुनिश्चितमिहायाति विमुक्तमिव निःस्पृहम् ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्भय, शुक, अव्यग्र बनत, एकाग्रचित्त से जाते जब ।
जङ्गम जीव, तहां उनका, शुभ मङ्गल दर्शन करते तब ॥ १३ ॥

सुरगण, सब, निज शक्ती के अनुसार, उन्हें तब पूजत हैं ।
यथा न्याय से, पूजत, उनको पुष्पवृष्टि से छावत हैं ॥ १४ ॥

उन्हें देख, गन्धर्व अप्सरागण सब ही अति विस्मित हैं ।
बड़े सिद्ध, ऋषिगण भी, उनको देखे तब अति विस्मित हैं ॥ १५ ॥

सिद्ध सोचते "तपसिद्धि से, कौन गगन मों विचरत हैं ? ।
निज तनु ना लख, ऊपर देखत; हमको बड़ सुख देवत हैं" ॥१६॥

शुक त्रिलोक विख्यात महात्मा चले लखत रवि पूरब ही ।
वाग्यत बड़ धर्मात्मा, शुक, गति शब्द भरा तब नभ सब ही ॥१७॥

नभ में जाते, उन्हें अप्सरागण सब ही तब देख रहे ।
सम्भ्रम चित, उत्फुल्ल नयन से लख अति विस्मित होय रहे ॥ १८ ॥

कहे पञ्चचूड़ादिक सब जो उनको आते देख रहे ।
कौन देवता है यह जो अति श्रेष्ठ गती से आय रहे ॥ १९ ॥

निस्पृह अरु निश्चित ही विमुक्त बने भये यह दीख रहे ।
बड़े देवता कौन रहे यह, इस स्थल मों जो आय रहे ? ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः समभिचक्राम मलयं नाम पर्वतम् ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च यं नित्यमुपसेवतः ॥ २१ ॥

तस्य ब्रह्मर्षिपुत्रस्य विस्मयं ययतुः परम् ।
अहो बुद्धिसमाधानं वेदाभ्यासरते द्विजे ॥ २२ ॥

अचिरेणैव कालेन नभश्चरति चन्द्रवत् ।
पितृशुश्रूषया बुद्धिं सम्प्राप्तोऽयमनुत्तमाम् ॥ २३ ॥

पितृभक्तो दृढतपाः पितुः सुदयितः सुतः ।
अनन्यमनसा तेन कथं पित्रा विसर्जितः ॥ २४ ॥

उर्वश्या वचनं श्रुत्वा शुकः परमधर्मवित् ।
उदैक्षत दिशः सर्वा वचने गतमानसः ॥ २५ ॥

सोऽन्तरिक्षं महीं चैव सशैलवनकाननाम् ।
विलोकयामास तदा सरांसि सरितस्तथा ॥ २६ ॥

ततो द्वैपायनसुतं बहुमानात् समन्ततः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा निरीक्षन्ते स्म देवताः ॥ २७ ॥

अब्रवीत्तास्तदा वाक्यं शुकः परमधर्मवित् ।
पिता यद्यनुगच्छेन्मां क्रोशमानः शुकेति वै ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर शुकदेव, गगन मों जाते मलयगिरी पर पहुँच रहे ।
जहां अप्सरा पूर्वचित्ति अरु उर्वशि का भी वास रहे ॥ २१ ॥

ब्रह्म ऋषि सुत प्रभाव लख, वे, कहती अस बड़ विस्मित तब ।
"वेदाभ्यासी द्विज, कस, ग्यानी भया ? बने हम विस्मित अब ॥२२॥

पितु सेवा से, अल्प समय में, बड़ ग्यानी बन विंचरत है ।
दिशा प्रकाशित करते, जैसे, चन्द्र, गगन मो विचारत हैं ॥ २३ ॥

ये तो बड़ पितु भक्त, तपस्वी, तथा पिता के प्रिय सुत है ।
अनन्यचित प्रिय पितु से, यह, अब, कैसे आज विसर्जित है ॥२४॥

तहाँ परम धर्मज्ञ देव शुक सुने उवर्शी वचन हि को ।
इधर उधर वे सब ओर देखते ध्यावत है उस वचन हि को ॥ २५ ॥

शुकजी तव नभ मण्डल, अरु बन, पर्वत को भी देख रहे ।
महारण्य सह भूतल अरु तालाब नदी देख रहे ॥ २६ ॥

चहू ओर से, सभी देवता, तहाँ उन्हें देखत है ।
द्वैपायन सुत, शुकजी का बहुमान करत, कर जोरत है ॥ २७ ॥

उनसे धार्मिक शुक, तब कहते, "यदि, अब मम पितु आवेंगे ।
हे शुक ! हे शुक ! कहत प्रेम से चिल्लाते, यदि रोवेंगे ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः प्रतिवचो देयं सर्वैरेव समाहितैः ।
एतन्मे स्नेहतः सर्वे वचनं कर्तुमर्हथ ॥ २९ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा दिशः सर्वाः सकाननाः ।
समुद्राः सरितः शैलाः प्रत्यूचुस्तं समन्ततः ॥ ३० ॥

यथाऽऽज्ञापयसे विप्र बाढमेवं भविष्यति ।
ऋषेर्व्याहरतो वाक्यं प्रतिवक्ष्यामहे वयम् ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिपतने द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३३२] समाप्तः ॥

३३३वाँ अध्याय प्रारम्भ

भीष्म उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्मर्षिः सुमहातपाः ।
प्रातिष्ठत शुकः सिद्धिं हित्वा दोषाँश्चतुर्विधान् ॥ १ ॥

तमो ह्यष्टविधं हित्वा जहौ पञ्चविधं रजः ।
ततः सत्त्वं जहौ धीमाँस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २ ॥

ततस्तस्मिन् पदे नित्ये निर्गुणे लिङ्गवर्जिते ।
ब्रह्मणि प्रत्यतिष्ठत्स विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो फिर आप सभी उनको स्थिर करके, उत्तर दे देना।
स्नेह आपका मुझ पर है, सो इतनी किरपा कर देना" ॥ २९ ॥

गिरि, बन, सागर, नदी, दिशा, जब ऐसा कहना सुनते हैं ।
चहू ओर से, शुकजी को वें प्रत्युत्तर अस देते हैं ॥ ३० ॥

आप कहत हो, तस तव आज्ञा पालन हम सब कर देंगे।
पितु आकर, तव बात पूछते, हम सब उत्तर दे देंगे ॥ ३१ ॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्मपर्व का ३३२वाँ अध्याय समाप्त ॥

३३३वाँ अध्याय प्रारम्भ

भीष्म कहे

भीष्म कहे "शुक अस कहके, फिर सिद्धी पथ में जाते हैं।
धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, विरक्ती मद चहु दोष हि तजते हैं ॥ १ ॥

अष्ट तमोगुण तज, शुकजी ने, पञ्च रजोगुण त्याग दिया।
तजे सत्व गुण को भी, वे फिर, सो ही अद्भुत बड़ा भया ॥ २ ॥

धूम रहित अग्नी सम जो नित, लिङ्ग तथा गुण रहित रहे।
ऐसो सूर्यान्तर्गत उत्तम पर ब्रह्म में शुक ही रहे ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्कापाता दिशां दाहो भूमिकम्पस्तथैव च ।
प्रादुर्भूतः क्षणे तस्मिँस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

द्रुमाः शाखाश्च मुमुचुः शिखराणि च पर्वताः ।
निर्घातशब्दैश्च गिरिर्हिमवान् दीर्यतीव ह ॥ ५ ॥

न बभासे सहस्रांशुर्न जज्वाल च पावकः ।
ह्रदाश्च सरितश्चैव चुक्षुभुः सागरास्तथा ॥ ६ ॥

ववर्ष वासवस्तोयं रसवच्च सुगन्धि च ।
ववौ समीरणश्चापि दिव्यगन्धवहः शुचिः ॥ ७ ॥

स शृङ्गे प्रथमे दिव्ये हिमवन्मेरुसम्भवे ।
संश्लिष्टे श्वेतपीते द्वे रुक्मरूप्यमये शुभे ॥ ८ ॥

शतयोजनविस्तारे तिर्यगूर्ध्वश्च भारत ।
उदीचीं दिशमास्थाय रुचिरे सन्ददर्श ह ॥ ९ ॥

सोऽविशङ्केन मनसा तथैवाभ्यपतच्छुकः ।
ततः पर्वतशृङ्गे द्वे सहसैव द्विधा कृते ॥ १० ॥

अदृश्येतां महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततः पर्वतशृङ्गाभ्यां सहसैव विनिःसृतः ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिशा दाह तब, उल्का गिरते, अरु भूकम्प भी होवत हैं ।
शुक उपराम काल में अद्भुत यह सब असगुन होवत हैं ॥ ४ ॥

तरु शाखाएँ टूटत हैं अरु गिरी शिखर भी टूट रहे ।
मानो ध्वनि से तहाँ हिमालय पर्वतराज विदीर्ण रहे ॥ ५ ॥

अग्नी भी प्रज्वलित नहीं अरु सूर्य प्रकाशित नहीं भये ।
सागर, अरु तालाब, नदी ; सब बड़े जलाशय क्षुब्ध भये ॥ ६ ॥

सुरेन्द्र तब जल बरसावत है, जामों होवे दिव्य सुगन्ध ।
वायू भी फिर बहता है तब, जा में, होवे दिव्य सुगन्ध ॥ ७ ॥

उत्तर में, दो, मेरु गिरी अरु हिम गिरि के ही शिखर बड़े ।
मानो, सोने अरु चांदी के बड़े बड़े दो स्तंभ खड़े ॥ ८ ॥

सौ योजन लम्बे, वे, गिरि के शिखर, मनोहर दिव्य रहे ।
हिम गिरि से रवि मण्डल जाते जाते शुकजी देख रहे ॥ ९ ॥

शुकजी जब अविशङ्कित चित से ऊपर को उठ जाते हैं ।
तब दोनों, वे गिरी शिखर, झट भिन्न भिन्न दिख जाते हैं ॥ १० ॥

बड़ा हि अद्भुत दृश्य रहा, वो शिखर तहाँ जो अलग भये ।
शुकजी दोनों शिखरों पर से ऊपर को जो चले गये ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न च प्रतिजघानास्य स गतिं पर्वतोत्तमः ।
ततो महानभूच्छब्दो दिवि सर्वदिवौकसाम् ॥ १२ ॥

गन्धर्वाणामृषीणां च ये च शैलनिवासिनः ।
दृष्ट्वा शुकमतिक्रान्तं पर्वतं च द्विधा कृतम् ॥ १३ ॥

साधु साध्विति तत्रासीन्नादः सर्वत्र भारत ।
स पूज्यमानो देवैश्च गन्धर्वै ऋषिभिस्तथा ॥ १४ ॥

यक्षराक्षससङ्घैश्च विद्याधरगणैस्तथा ।
दिव्यैः पुष्पैः समाकीर्णमन्तरिक्षं समन्ततः ॥ १५ ॥

आसीत्किल महाराज शुकाभिपतने तदा ।
ततो मन्दाकिनीं रम्यामुपरिष्टादभिव्रजन् १६ ॥

शुको ददर्श धर्मात्मा पुष्पितद्रुमकाननाम् ।
तस्यां क्रीडन्त्यभिरतास्ते चैवाप्सरसां गणाः ॥ १७ ॥

शून्याकारं निराकाराः शुकं दृष्ट्वा विवाससः ।
तं प्रक्रामन्तमाज्ञाय पिता स्नेहसमन्वितः ॥ १८ ॥

उत्तमां गतिमास्थाय पृष्ठतोऽनुससार ह ।
शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वान्तरिक्षगाम् ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी गति गिरिराज, न रोके, सो हि, अचंभा बड़ा भया ।
फिर नभ मण्डल में सुरगण के ध्वनि का शब्द हि बड़ा भया ॥१२॥

शैलशृङ्ग वे द्विधा भये, अस शुकजी ऊपर जावे जव ।
गिरिवासी गन्धर्व ऋषी ध्वनि "धन्य धन्य" बड़ होवे तव ॥ १३ ॥

योगेश्वर शुकदेव तहाँ जब रवि मण्डल को जावत हैं ।
सुर गन्धर्व यक्ष मुनि राक्षस विद्याधर से पूजित हैं ॥ १४ ॥

महामुनीश्वर शुकजी ऐसे जात जात जब पूजित है ।
नभ मण्डल तब, सब प्रकार के दिब्य पुष्प से पूरित है ॥ १५ ॥

तहाँ परम धर्मात्मा शुक जब ऊपर ऐसो जाय रहे ।
अति रमणीय पुष्पमय बन अस नदि मन्दाकिनि को देख रहे ॥१६॥

तहाँ अप्सरा वृन्द नदी में क्रीड़ा में जो मग्न रही ।
शून्यवृत्ति के शुक को लख वे तस ही खेलत नग्न रही ॥ १७ ॥

शुकजी के अति प्रेमी पितु तव बड़े स्नेह से भर करके ।
सुत के पीछे आय रहे हैं उत्तम गति को ले करके ॥ १८ ॥

वायुलोक के ऊपर जा, शुक गगन गती को लेते हैं ।
निज प्रभाव को दरसाते, ब्रह्मत्व लाभ कर लेते हैं ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्शयित्वा प्रभावं स्वं ब्रह्मभूतोऽभवत्तदा ।
महायोगगतिं त्वन्यां व्यासोत्थाय महातपाः ॥ २० ॥

निमेषान्तरमात्रेण शुकाभिपतनं ययौ ।
स ददर्श द्विधा कृत्वा पर्वताग्रं शुकं गतम् ॥ २१ ॥

शशंसुर्ऋषयस्तत्र कर्म पुत्रस्य तत्तदा ।
ततः शुकेति-दीर्घेण शब्देनाक्रन्दितस्तदा ॥ २२ ॥

स्वयं पित्रा स्वरेणोच्चैस्त्रींल्लँलोकाननुनाद्य वै ।
शुकः सर्वगतो भूत्वा सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥ २३ ॥

प्रत्यभाषत धर्मात्मा भो-शब्देनानुनादयन् ।
तत एकाक्षरं नादं भोरित्येव समीरयन् ॥ २४ ॥

प्रत्याहरञ्जगत्सर्वमुच्चैः स्थावरजङ्गमम् ।
ततः प्रभृति चाद्यापि शब्दानुच्चारितान् पृथक् ॥ २५ ॥

गिरिगह्वरपृष्ठेषु व्याहरन्ति शुकं प्रति ।
अन्तर्हितः प्रभावं तु दर्शयित्वा शुकस्तदा ॥ २६ ॥

गुणान् सन्त्यज्य शब्दादीन् पदमभ्यगमत् परम् ।
महिमानं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्यामिततेजसः ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुकजी के पितु, व्यास देव, तब महागति को लेते हैं ।
इक निमेष में उसी स्थान पर शीघ्र गती से आते हैं ॥ २० ॥

पोहोंचे हैं वे वहीं, जहां से, ऊपर को शुकदेव गये ।
वहां देखते हैं, शुक, तो, गिरि शिखर द्विधा कर, चले गये ॥ २१ ॥

उन्हें ऋषि सब, कार्य शुक हि का, करत प्रशंसा, कहते हैं ।
वह सुन व्यास, "हाय शुक !" कहते जोर जोर से रोते हैं ॥ २२ ॥

व्यास पिताजी का शुकजी पर स्नेह बहुत ही वड़ा रहा ।
"हाय हाय शुक !" कह रोते, ध्वनि से त्रैलोक हि सब गूँज रहा ॥ २३ ॥

धर्मात्मा शुक, सर्वात्मा सो सर्वमुखी तब बने रहे ।
सो, वे "भो" कह बड़े ज़ोर से पितु को उत्तर दिये रहे ॥ २४ ॥

फिर, सब स्थावर, जङ्गममय जग, "भो" कह, एकाक्षर से ही ।
प्रत्युत्तर तब देते पितु को बड़े हि ऊँचे स्वर से ही ॥ २५ ॥

तब से अब तक गिरि, गुफादि में प्रतिध्वनि जो होवत है ।
शुकदेव हि के कारण, इनका प्रत्त्युत्तर यह होवत है ॥ २६ ॥

शब्दादिक विषयों को तज शुक, निज प्रभाव दरसाते हैं ।
अन्तर्हित होकर के वे फिर, दिव्य परमपद पाते हैं ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निषसाद गिरिप्रस्थे पुत्रमेवानुचिन्तयन् ।
ततो मन्दाकिनीतीरे क्रीडन्तोऽप्सरसां गणाः ॥ २८ ॥

आसाद्य तमृषिं सर्वाः सम्भ्रान्ता गतचेतसः ।
जले निलिल्यिरे काश्चित् काश्चिद्गुल्मान् प्रपेदिरे ॥ २९ ॥

वसनान्याददुः काश्चित् तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमम् ।
तां मुक्ततां तु विज्ञाय मुनिः पुत्रस्य वै तदा ॥ ३० ॥

सक्ततामात्मनश्चैव प्रीतोऽभूद् व्रीडितश्च ह ॥ ३१ ॥

तं देवगन्धर्ववृतो महर्षिगणपूजितः ।
पिनाकहस्तो भगवानभ्यागच्छत शङ्करः ॥ ३२ ॥

तमुवाच महादेवः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं कृष्णद्वैपायनं तदा ॥ ३३ ॥

अग्नेर्भूमेरपां वायोरन्तरिक्षस्य चैव हि ।
वीर्येण सदृशः पुत्रः पुरा मत्तस्त्वया वृतः ॥ ३४ ॥

स तथालक्षणो जातस्तपसा तव सम्भृतः ।
मम चैव प्रसादेन ब्रह्मतेजोमयः शुचिः ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तव अतितेजःपुञ्ज, पुत्र की महिमा, व्यास हि देखत हैं।
सदा, उसी का चिन्तन करते, गिरी शिखर पर बैठत हैं ॥ २८ ॥

तहाँ, अप्सरा, मन्दाकिनि के तट पर, जो तब खेल रहीं ।
व्यास मुनी को लख के, लज्जित, तथा बड़ी भयभीत रहीं ॥ २९ ॥

गुल्म लता के आड़ कोइ भयि, जल में कोई बैठ गयी ।
कोई कोई, झट से अपने वस्त्र उठाये पेहर गयी ॥ ३० ॥

व्यास, उसे लख, सुत की मुक्ती जानत, प्रसन्न होवत हैं ।
तथा निजी आसक्ती को भी लखकर लज्जित होवत हैं ॥ ३१ ॥

उसी समय में शङ्करजी जो महर्षियों से पूजित हैं ।
सुर गन्धर्वों से घिरे भये अस उनके सम्मुख प्रगटत्त हैं ॥ ३२ ॥

पुत्र शोक से दुःखी, द्वैपायन मुनि को जब देखत हैं ।
धीरज देते महादेवजी, उनसे ऐसो बोलत हैं ॥ ३३ ॥

"वीर्यवान भू, जल, अग्नी, नभ, वायू सम सुत माँगे आप ।
तव तप से मैं प्रसन्न था, सो मुझसे सुत पाये आप ॥ ३४ ॥

तव सुलक्षणी सुत तप कर वे, पवित्रपूर्वक बढा रहा ।
मेरी किरपा से ही उसका ब्रह्म तेज भी बढा रहा ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स गतिं परमां प्राप्तो दुष्प्रापामजितेन्द्रियैः ।
दैवतैरपि विप्रर्षे तं त्वं किमनुशोचसि ॥ ३६ ॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावत् स्थास्यन्ति सागराः ।
तावत् तवाक्षया कीर्त्तिः सपुत्रस्य भविष्यति ॥ ३७ ॥

छायां स्वपुत्रसदृशीं सर्वतोऽनपगां सदा ।
द्रक्ष्यसे त्वं च लोकेऽस्मिन् मत्प्रसादान्महामुने ॥ ३८ ॥

सोऽनुनीतो भगवता स्वयं रुद्रेण भारत ।
छायां पश्यन् समावृत्तः स मुनिः परया मुदा ॥ ३९ ॥

इति जन्म गतिश्चैव शुकस्य भरतर्षभ ।
विस्तरेण समाख्याता यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ४० ॥

एतदाचष्ट मे राजन् देवर्षिर्नारदः पुरा ।
व्यासश्चैव महायोगी सञ्जल्पेषु पदे पदे ॥ ४१ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं मोक्षधर्मोपसंहितम् ।
धारयेद्यः शमपरः स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पतनसमाप्तिर्नाम त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः [३३३] समाप्तः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजितेन्द्रिय सुर को भी दुर्लभ, अस, पाया वह, पद उत्तम ।
सो, तुम उसके कारण अब क्यों शोक करत हो मुनिसत्तम ? ॥ ३६॥

जब तक यह सब पर्वत अरु यह सागर भी रह जावेंगे ।
तब तक सुत सह, तुम भी, अक्षय कीर्तिमान रह जावेंगे ॥ ३७ ॥

मेरी किरपा से, इस जग में, देख सकोगे, तुम, मुनिवर ।
सब प्रकार से, निजि सुत सम ही, छाया आकृति, निस दिन भर ॥ ३८॥

रुद्रदेव, द्वैपायन मुनि से, अस वर दे, जब कहते हैं ।
व्यास तदा, तब, हर्षित हो, सुत छाया लखते जाते हैं ॥ ३९ ॥

भरत श्रेष्ठ, हे राजन् ! तुमने पूछा था जो यह मुझसे ।
सो, शुकजी की कथा, सविस्तार, बोला अब मैं यह तुमसे ॥ ४० ॥

प्रथम एकदा, नारदजी, अरु व्यास मिले थे, जब, मुझसे ।
इसी विषय को, कथन किया था, उन दोनों ने, तब मुझसे ॥ ४१ ॥

मोक्ष धर्म का पवित्र यह इतिहास, लोग, जो ध्यावत हैं ।
सो ही राम में रत, सज्जन के, शीघ्र परमपद पावत हैं ॥ ४२ ॥

॥ श्रीमन्महाभारत के शान्तिपर्व में मोक्षधर्मपर्व का ३३३वाँ अध्याय समाप्त ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

❀ समर्पण ❀

जय मङ्गल श्रीकृष्ण पार्थ, नारायण, नर, वाग्देवी, व्यास ।
शुक-विरक्ति रचायो, तुम्हेंने, करवा कर बदरी वास ॥
तुम्हें, तुम्हारा, अर्पण करके, कर जोड़े, अरु मांगे दास ।
रामविठ्ठल प्रभु, सर्वान्तिर्गत, दीजो चरणों का ही ध्यास ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुद्रक —
भारती पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
१५१, इमली बाजार, इन्दौर - ४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi